पार्श्व जिनेश्वर

(महाकाव्य)

महोपाध्याय माणकचन्द रामपुरिया

कलासन प्रकाशन

कल्याणी भवन, वीकानेर (राज.)

ISBN 81-86842-49-7

संस्करण : प्रथम 1999

प्रकाशन · कलासन प्रकाशन
मॉडर्न मार्केट, वीकानेर (राज.)

लेजर प्रिंट श्री करणी कम्प्यूटर एण्ड प्रिन्टर्स
गंगाशहर, वीकानेर (राज)

मुद्रक कल्याणी प्रिन्टर्स
माल गोदाम रोड, वीकानेर

मूल्य 160/- रुपये

Parshv Jineshwar

(EPIC) by Mahopadhaya Manakchand Rampuria

Page 184 Price 160/-

समपर्ण .–

"पार्श्व जिनेश्वर" ! परम शुभेश्वर ।

जय–जय अन्तर्यामी ,

जनम–जनम की यही याचना–

रहे हृदय अनुगामी,

नयन–नयन का भाव–सुमन का–

सचय स्नेह समर्पित,

ग्रहण करो प्रभु वस्तु तुम्हारी–

तुमको ही हैं अर्पित !!

माणकचन्द रामपुरिया

आत्म कथ्य :–

बहुत दिनो से लालसा थी, भगवान श्री पार्श्वनाथ के पावन चरित पर एक महाकाव्य की रचना की जाय। युगादि जिनेश्वर भगवान श्री पार्श्वनाथ की कोटिश अभ्यर्थना करता हूँ–उनके पावन प्रसाद–स्वरूप यह महाकाव्य पूर्ण हो गया, मेरी लालसा पूरी हो गयी। मेरी जिज्ञासा नही है कि, मै पूछूँ कि यह महाकाव्य कैसा हुआ है ? मै तो यही जानता हूँ कि प्रभु के पावन स्मरण का यह अवसर मेरे लिए बडा ही सुखद रहा।

हॉ, एक बात और निवेदन कर दूँ । भगवान श्री का चरित्र बडा ही उद्‌बोधक और प्रेरणाप्रद है। इनके नामकरण का उल्लेख विभिन्न ग्रन्थो मे, इस प्रकार हुआ है कि "अशुचि कर्म से निवृत होने के पश्चात्, बालक का नामकरण किया गया। नाम रखा गया–पार्श्व। क्योकि जब बालक गर्भ मे था तब एक नाग वामा देवी के चारो और फिरता रहता था।" प्रस्तुत काव्याजलि मे इसका उल्लेख नही किया गया है। सम्भव है इसी नाग की रक्षा, भगवान श्री ने कमठ के यज्ञ–पिण्ड मे अवस्थित काष्ट खण्ड से की थी। जो भी हो यह प्रभु पार्श्व जिनेश्वर के चरित्र की विशेषता है।

सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र का पालन करने एव निर्मल धर्म–पथ पर अग्रसर होने से ही जन्म जन्मान्तरो से भव–ताप–तापित जीव, धीरे–धीरे कर्मो की निर्जरा करते हुए, अपने गन्तव्य मोक्ष महल तक पहुँच कर अपना जीवन परम सुखी–समुज्ज्वल और तेजोदप्त कर सकता है।

मै अकिचन बुभुक्षु उनके पूतम चरणो पर अपना भाव सुमन समर्पित कर अपने को धन्य समझता हूँ। ॐ अस्तु।।

पौष कृष्ण 10 — माणकचन्द रामपुरिया
संवत् 2048

प्रथम सर्ग

सभी तपस्वी—ऋषि—मुनियो को—
करता नमन हृदय से,
कृपा प्राप्त कर बचता मानव—
जन्म—मरण के भय से ।

दुनिया मे तो कष्ट अपरिमित
हर प्राणी को मिलते,
किन्तु हृदय मे ज्योति जहॉ है—
मन के पकज खिलते,

नमन तुम्हे जिन—महातपस्वी—
जीवन विभुतादायी,
दर्शन—ज्ञान—चरित्र—प्रदाता—
सम्यक—पथ—अनुयायी,

तेरी करूणा का सम्बल पा—
कितने ही नर—नारी,
सफल हुए इस जीवन—पथ पर—
बनकर दृढ अविकारी,

नमन तुम्हे हर बार विश्व के—
तुम हो पथ—प्रदर्शक,
तडप रहे भूतल पर तुम हो—
शीतल अमृत—वर्षक।

◇ ◇ ◇ ◇

आज धरा पर देखो कैसा—
अन्धकार है छाया,
[illegible]-अपावन कर्म—अमानुष—
मानव ने अपनाया ।

हिसा—द्वेष हृदय मे नर के—
करूणा कही नही है,
रक्त पिपासित मनुज, मनुज का—
धरती कॉप रही है,

इस नृशस कुकृत्य अपावन—
का कुछ अन्त न दिखता,
जाने आज विधाता भव का—
भाग्य विभव क्या लिखता ?

दिशा—दिशा मे क्रन्दन रोदन—
औ चीत्कार भरा है,
देखो, मानव—मानव से भी—
कितना आज डरा है।

कदम—कदम पर बम विस्फोटक—
क्षण—क्षण फूट रहे है,
हृदय—हृदय के पावन बन्धन
लगते, टूट रहे है,

भिन्न—भिन्न सब, कोई भी अब—
अपना जान न पड़ता,
जिसे देखिए, वही कटारी—
लेकर आज अकड़ता,

जीवन आज अरक्षित कितना—
मोह—कूप मे डूबा,
अपनेपन से स्वय मनुज है—
कितना ऊबा—ऊबा,

घर—घर मे आतकवाद का—
जहर घिनौना फैला,
जिससे उज्ज्वल हृदय हुआ है—
नर का मैला—मैला,

अबला तडप रही है बच्चे—
पग—पग सिसक रहे है,
कौन कहे वसुधा पर कितने—
रक्त निरीह बहे है।

✧ ✧ ✧ ✧

कौन करे उपचार प्रश्न है—
आज सभी के सम्मुख,
कौन भला बॉटेगा ऐसे—
कैसे दारूण भव—दुख ?

सत्ता ही आदर्श आज है—
भूतल के जन—जन का,
सत्ता के घेरे मे खोया—
साथी अपनेपन का,

किसी तरह हाथो मे सत्ता—
आए चाह यही है,
[illegible] सकल व्यवहार—पूर्ति पर—
[illegible] की नजर रही है

कलुषित साधन का आराधन–
श्रेय बना जीवन का,
अपना सब कुछ रहे सुरक्षित
पग–पग लोलुप मन का,

जहॉ कही जो बैठा, हटने–
का फिर नाम न लेता,
स्वार्थ–सिद्धि के सम्मुख कोई–
गुण को मान न देता,

ऑखो पर सत्ता की पट्टी–
जब तक बॅधी रहेगी,
तब तक सात्विकता की धारा–
उल्टी सदा बहेगी,

शक्ति सॅजोकर निर्बल को जो–
कहते–शान्त रहो तुम,
मै जो कहता वही श्रेष्ठ है–
सब दिन वही कहो तुम,

निरालम्ब आशा की भाषा -
कब तक दिल सहेगा ?
अत्याचार के घन प्रहार पर–
कब तक मौन रहेगा ?

जीवन आज अरक्षित कितना–
मोह–कूप मे डूबा,
अपनेपन से स्वय मनुज है–
कितना ऊबा–ऊबा,

घर–घर मे आतकवाद का–
जहर घिनौना फैला,
जिससे उज्ज्वल हृदय हुआ है–
नर का मैला–मैला,

अबला तडप रही है बच्चे–
पग–पग सिसक रहे है,
कौन कहे वसुधा पर कितने–
रक्त निरीह बहे है।

✧ ✧ ✧ ✧

कौन करे उपचार प्रश्न है–
आज सभी के सम्मुख,
कौन भला बॉटेगा ऐसे–
कैसे दारूण भव–दुख ?

सत्ता ही आदर्श आज है–
भूतल के जन–जन का,
सत्ता के घेरे मे खोया–
साथी अपनेपन का,

किसी तरह हाथो मे सत्ता–
आए चाह यही है,
[illegible] सकल व्यवहार–पूर्ति पर–
सब की नजर रही है,

कलुषित साधन का आराधन–
श्रेय बना जीवन का,
अपना सब कुछ रहे सुरक्षित
पग–पग लोलुप मन का,

जहॉ कही जो बैठा, हटने–
का फिर नाम न लेता,
स्वार्थ–सिद्धि के सम्मुख कोई–
गुण को मान न देता,

ऑखो पर सत्ता की पट्टी–
जब तक बॅधी रहेगी,
तब तक सात्विकता की धारा–
उल्टी सदा बहेगी,

शक्ति सॅजोकर निर्बल को जो–
कहते–शान्त रहो तुम,
मै जो कहता वही श्रेष्ठ है–
सब दिन वही कहो तुम,

निरालम्ब आशा की भाषा–
कब तक विश्व सहेगा ?
अनाचार के पग प्रहार पर–
कब तक मौन रहेगा ?

✧ ✧ ✧ ✧

जर्जर विश्व हुआ अब इसको–
नूतन ज्ञान किरण दो,
उठे स्वार्थ से ऊपर मानव–
निर्मल स्नेह–वरण दो,

शक्ति उसे दो अपनेपन से–
हटकर दृष्टि बढाएँ,
पार्श्वनाथ के उपदेशो से–
जीवन सफल बनाएँ,

इससे ही कल्याण सृष्टि का
दिखता सदा सुरक्षित,
नरता का अनमोल खजाना–
सदा रहेगा रक्षित,

जय–जय पारसनाथ कि जिनकी–
गाथा बडी विमल है,
दाह–दग्ध इस अचला के हित–
शीतल गगाजल है।

द्वितीय सर्ग

जय–जय भगवन पार्श्वनाथ की–
कर्म–ज्ञान औ भक्ति सार्थ की,
इनकी महिमा अगम अचल है–
जिसका प्यासा यह भूतल है,

यहाँ भक्ति की जोत जगी है—
कर्म—ज्ञान की लाग लगी है,
सद्—गुण का ही वरण हुआ है—
तम असत्य का हरण हुआ है,

तन को कसकर तप—साधन से—
पुरश्चरण औ आराधन से,
किया जिन्होने पावन—निर्मल—
सभी तरह से विमल समुज्ज्वल,

उनका जागे वचन भुवन मे—
यही अपेक्षा है जीवन मे,
इससे भव का मान बढेगा—
होता नित कल्याण रहेगा,

आज धरित्री कॉप रही है—
प्रलय—घोष कुछ भॉप रही है,
महाअतल मे मनुज गिरा है—
ज्ञान—बुद्धि—मस्तिष्क फिरा है,

अपने कुछ भी देख न पाता—
पता न चलता किस पथ जाता,
कहने को सब ज्ञान मिला है—
लेकिन पथ सुनसान मिला है,

निकल पड़ा है पथ अनजाना—
बना रहा है बहुत बहाना,
[illegible] सत्य से विलग हुआ है—
अपनों से ही अलग हुआ है,

कोई उसके साथ नही है–
लक्ष्य न जाने दूर कही है,
गहन भ्रॉति मे भटक रहा है–
धारा मे अविराम बहा है,

सत्य किन्तु है दृग से ओझल–
तत्व हृदय का मिला न निर्मल,
घोर तिमिरमय पथ है आगे–
कैसे जडता बन्धन त्यागे,

समझ न कुछ भी आ पाता है–
केवल चलता ही जाता है,
अपनेपन का भाव भुलाकर–
बैठा लौलुप रथ पर आकर,

स्वार्थ–सिद्धि मे लगा हुआ है–
जन्म–मरण–भय नही छुआ है,
अपने को सर्वज्ञ मानता–
किन्तु सत्य क्या ? नही जानता,

घर–घर हिसा–द्वेष–कलह है–
पीड़ित जन–जन सभी तरह है,
एक–एक पर जोर दिखाता–
अपनो का ही रक्त बहाता,

लाल–लाल लोहू की धारा–
का है फूटा नया फबारा,
कोई इसको समझ न पाता–
किसका रक्त ? नही बतलाता,

आज देश की सडक—सडक पर—
बिखर रहा जो रक्त उफन कर,
भरत देश का ही है शोणित—
अपना ही अन्तर है खडित,

अपने हाथो हमने अपना—
चकनाचूर किया है सपना,
इसके आगे और कहॉ पर—
गहन गर्त है, गिरे जहॉ पर,

गहन तमिस्रा घिरी अभा की—
कोई पथ न दिखता बाकी,
सभी ओर घनघोर दुराशा—
का है फैला घना कुहासा,

इसे भेदना बडा कठिन है—
जन—जन का तो हृदय मलिन है,
मानव के मन—गहन निलय को—
करना है समृद्ध हृदय को,

अन्धकार जब मिट जायेगा—
भू का कण—कण मुस्काएगा,
मन का सरसिज तभी खिलेगा—
खोया नर को तत्त्व मिलेगा,

नर मे नरता विमल जगेगी—
साँस चैन से धरती लेगी,
[illegible]- कलह कुछ नही रहेगा—
[illegible]-हृदय की बात कहेगा,

तिमिराच्छन्न हृदय के पट पर–
उतरेगी छवि अविचल भास्वर,
ज्योति धरा पर व्याप्त रहेगी–
रजनी सघन समाप्त रहेगी,

पार्श्वनाथ की भक्ति सबल से–
ज्योति जगेगी ज्ञान धवल से,
इसीलिए जय उनकी गाओ–
अपना जीवन सफल बनाओ,

यही राह है जिस पर चलकर–
दुख से मुक्ति मिलेगी सत्वर,
भव को निर्मल भक्ति मिलेगी–
हर्ष अपरिमित शक्ति मिलेगी।

तृतीय सर्ग

वंदना उनकी करो जो—
सद्गुणों के साथ हैं,
खिल रहे जिनके अहर्निश—
प्राण के जलजात हैं,

रात–दिन जो जी रहे है–
आग की बौछार मे,
खो गए है जो अचानक–
स्वप्न के ससार मे,

क्या भला उम्मीद उनसे–
कौन उनको जानता ?
भीड मे उनको बताओ–
कौन है पहचानता ?

भीड है सब ओर इसमे–
जो दिखाई पड रहे,
लग रहे अनजान दृग मे–
किरकिरी से गड रहे,

छद्म सब का रूप भीतर–
और, बाहर और है,
घात हिसा–सौध मे ही–
आज इनका ठौर है,

स्वार्थ ही को धर्म अपना–
कर्म अपना मानते,
स्वार्थ से ऊपर कही कुछ–
है, नही पहचानते,

मिल गयी कुर्सी कही तो
छोडना दुश्वार है,
हर तरह का कर्म करके–
साधना ससार है,

दृष्टि उनकी स्वार्थ—सीमा—
से न आगे देखती,
चाह उनकी जय—विजय की—
भाग्य अपना लेखती,

यह वितडावाद भीषण—
हर मनुज मे पैठ कर,
कर रहा उद्भ्रान्त मन को—
दुर्गुणो मे बैठ कर,

काट कर जड पेड की सब—
चाहते फल प्राप्त हो,
छोड खुद को, दूसरो के—
चाकचिक्य समाप्त हो,

आप अपनी ओर कोई—
कुछ नही है झाकता,
पाप पीडित मर्म है पर—
खुद नही कुछ ऑकता,

अन्य को सब चाहते वह—
शीघ्र आए राह पर,
शीश पॉवो पर झुकाऍ—
लोग उनको चाह कर,

यह असगति की दिशा है—
कौन कैसे पार हो ?
किस तरह इस निविड तम से—
सृष्टि का उद्धार हो ?

ध्यान जब तक देह पर है–
आत्म–दर्शन भागता,
प्राण का आलोक निर्मम–
उत्स को भी त्यागता,

वाह्य–मुख मन, जब हृदय की–
ओर मुडता चाह कर,
छोड कर दुस्सग सारा–
जीव लगता राह पर,

पर अकेले कुछ न होगा–
है कठिन यह साधना,
हो न पाई सफल अब तक–
काय की आराधना,

आज के इस जड–जगत मे–
खोज लो क्या श्रेष्ठ है,
कौन–सा पथ शुभ सदाशय–
मैं सभी से ज्येष्ठ है,

सत्य है इस विश्व मे अब–
सद्–गुणो का मान हो,
दिव्य पारस नाथ की ही–
कीर्त्ति का गुणगान हो।

चतुर्थ सर्ग

सृष्टि विकल है, आज किसी को–
        शान्ति नहीं मिल पाती,
भीतर–भीतर भीषण ज्वाला–
        हर दिल में धुंधुआती,

चाह रहे सब विमल शान्ति से–
जीवन यापन करना,
दुख से हटकर निश्चित सुख की–
राहो पर पग धरना,

किन्तु हृदय की चाह हृदय मे–
घुट–घुट कर मर जाती,
सुखद कल्पना वर्त्तमान मे–
मूर्त्त नही हो पाती,

ऐसा घोर अँधेरा आगे–
पॉव नही बढ पाता,
बाधाओ के शिला–खण्ड से–
कदम–कदम टकराता,

सब एकाकी, साथ न कोई–
सोया पुण्य न जगता,
अन्तर का विश्वास पुरातन–
उखडा–उखडा लगता,

ऐसे मे बस एक मूर्ति पर–
स्वत दृष्टि टिक जाती,
सब विशेषता मानवता की–
सदा वही मुस्काती,

आदि अन्त तक जिनका जीवन–
शान्त शुद्ध निर्मिल था,
दया, क्षमा, सन्तोष भरा वह–
निश्छल जीव सरल था,

कदम–कदम पर विपदाओ के–
पर्वत टूट रहे थे,
श्रद्धा औ परितोष अखण्डित–
रह–रह छूट रहे थे,

ऐसे मे भी अविचल रहकर–
जिसने हृदय सॅवारा,
पथ दिखलाता रहा अकम्पित–
नभ मे ज्यो ध्रुव–तारा,

जिसने कभी न देखा मुडकर–
बढता रहा निरन्तर,
बाधाऍ खुद मिटी धूल–सी–
जिसके पथ पर आकर,

मानव मे मानवता जागी–
जिसके पद को छूकर,
सभी तरह जो पूर्ण बना था–
चलकर अपने पथ पर,

हर क्षण मानव के अन्तर मे–
दानव भी है रहता,
इसीलिए अन्तस्तल नर का–
प्रतिपल रहता दहता,

जिसने इस दानव को अपने–
वस मे रक्खा कस कर,
उसके पुण्य–पथ पर बाधा–
कभी न आई क्षण भर;

आज विश्व में पशुता का ही–
जोर दिखाई पडता,
अहंकार औ दम्भ–घृणा का–
शोर सुनाई पडता,

बहिर्मुखी है वृत्ति हृदय की–
अन्तर दूर हुआ है,
सत्य सनातन देख न पाता–
नर मजबूर हुआ है,

बाहर केवल पशुता का बल–
जिसमे मनुज पडा है,
महा पाप के अतल गर्त मे–
मानव आज खडा है,

इसे चाहिये सत्त्व हृदय का–
दूर्वादल–सा कोमल,
इसे चाहिये भक्ति निरामय–
गगाजल–सी शीतल,

किन्तु हृदय से दूर मनुज को–
कैसे यह मिल सकता,
भ्रान्त बुद्धि के गहन तिमिर मे–
मानव सदा अटकता,

जन्म–मृत्यु का दानव प्रतिक्षण–
रहता सदा सताता,
फिर भी मानव चेत न पाता–
रहता नित अकुलाता,

छोड सत्य की राह, वृथा ही–
अपना समय गँवाता,
क्षण भगुर मिथ्या तत्त्वो को–
सत्य समझ अपनाता,

सूचिभेद्य तम दृष्टि–बोध पर–
मानो घना तना है,
सत्य–शक्ति से निर्बल कितना–
भू पर मनुज बना है,

दृष्टि खोल दे वैसी कोई–
एक किरण दिखला दो,
महागर्त मे गिरे मनुज को–
ऊपर जरा उठा दो,

श्रेष्ठ शक्ति मानवता की सब–
नर मे विपुल भरी है,
दिव्य ज्योति अन्तर मे उसके–
अपने ही उतरी है,

किन्तु उसे अब ज्ञान नही है–
विस्मृति है जग आई,
इसीलिए नर बुद्धि धरा पर–
रहती है भरमाई,

इसे चाहिए ज्योति–शलाका–
अन्तर्मुख जो कर दे,
उसके तिमिराछन्न हृदय को–
नव प्रकाश से भर दे,

जडता के जड–बन्धन मे नर–
आज कराह रहा है,
पशु–बल के उद्‌भव से नर ने–
भीषण कष्ट सहा है,

इसे चाहिए ज्योति अखंडित–
जो यह तिमिर मिटा दे,
दृष्टि–बोध पर पडे चँदोवा–
को जो तुरत हटा दे,

हृदय–कमल जो मन्द पडा है–
उसको शीघ्र जगा दे,
ज्ञान–प्रभा की शीतल लौ से–
मन–मानस सुलगा दे,

सब कुछ है, पर विस्मृति का क्षण–
ऊपर जाग रहा है,
इसीलिए नर अपना सात्विक
वैभव त्याग रहा है,

✧ ✧ ✧ ✧

पार्श्वनाथ का चरित सुहावन–
गाओ ज्ञान जगेगा,
अन्तर धुल कर शुद्ध विभा का–
तत्त्व हृदय मे लेगा,

यही मार्ग है जिससे भव का–
जीवन सुखद बनेगा,
दग्ध–विदग्ध मनुज अन्तर मे–
नव प्रकाश भर लेगा,

जन्म–मरण का चक्र अहर्निश–
इस भूतल पर चलता,
इसी व्यूह मे मानव–जीवन–
रहता सदा मचलता,

अन्तर–तर जब खुलता मानव–
शुद्ध स्वय बन जाता,
उसी हृदय मे ज्ञान–प्रभा का–
दीप सुखद मुस्काता,

पार्श्वनाथ की महिमा गाओ–
हृदय विमल हो जाए,
भेद तिमिर को ज्योति प्रफुल्लित–
जीवन मे लहराए ।

[illegible] सर्ग

पार्श्वनाथ की गाथा पावन—
लगती अतिशय यह मनभावन !
दिव्य—शिखा—सा चरित सुशीतल—
भास्वर मन—मानस का उत्पल;

सदा अकम्पित नव प्रकाश—सा—
ज्ञान विभा मे नव सुवास—सा,
देख सभी विस्मित हो जाते—
स्वय देवता भू पर आते।

किन्तु जरा पीछे मुडने पर—
पूर्व जन्म की कथा श्रवण कर,
लगता मनुज स्वय ही अपने—
मूर्त्त बना सकते है सपने,

कैसा साधारण जीवन था—
प्राणि—मात्र से अपनापन था,
घर—बाहर सब भरा—भरा था—
नेह—गेह मन पर उतरा था,

सगे—सुबन्धु नए सहचर थे—
सब सम्बन्ध जमे घर—घर थे,
कुटिल हृदय का कमठ मिला था—
सुमन बीच ज्यो शूलखिला था,

भू पर जीव यहाँ जो पाता—
सब सामान्य विभव मुस्काता,
यहीं विरोध—तत्त्व भी जगते—
काँटे से जो तन मे लगते,

सभी सुलभ साधन थे भव के—
जन्म—मरण के सब उत्सव के,
किन्तु इसीमे जाग्रत जीवन—
ऊर्ध्व गमन करता था प्रतिक्षण,

जीवन सब को प्राप्त सुघर थे–
सम्मुख सब के शुभ्र प्रहर थे,
किन्तु लिप्त जो रहे वपुष मे–
नेह–गेह से तन्तु–धनुष मे,

उनमे भौतिकता थी केवल–
मन रहता था प्रतिपल चंचल,
शान्ति उन्हे मिल सकी न पलभर–
जीवन रहा भार–सा बनकर,

लगे रहे जड–जग के साधन–
वाह्य तत्त्व के थे आराधन,
अन्तर–तर वे देख न पाए–
जडता मे ही रहे समाए,

सुख के साधन बढे निरन्तर–
सब कुछ प्राप्त हुए क्षण–भगुर,
किन्तु चिरन्तन सत्य न जागा–
बना रहा नर स्वय अभागा,

किन्तु जिन्होने ऊपर चढकर–
देखा तन से आगे बढकर,
सब कुछ उन्हे मिला पृथिवी पर–
रहा जागता उनका अन्तर,

पार्श्वनाथ की कथा यही है–
वही जिन्दगी सफल रही है,
जीवन का उत्कर्ष किया है–
सब जीवो को हर्ष दिया है,

हर भव मे वे उठे निरतर–
किया स्वय को प्रतिपल भास्वर,
भौतिकता का दम्भ मिटा था–
मन का शतदल स्वय खिला था,

जडता के सब बन्धन तोडे–
नव प्रकाश से नाता जोडे,
ज्ञान विभा फैली धरती पर–
आए खुद ही सब से ऊपर,

जीवन–क्रम का यह विकास है–
सात्विकता का नव प्रकाश है,
कैसे सर्वसहा का प्राणी–
बनता नव आदर्श कहानी ?

यही भुवन मे उदाहरण है–
कटता जिससे जन्म–मरण है,
इसके जो विपरीत रहे हैं–
भौतिकता मे सदा बहे हैं,

उनके पथ का अन्त नही है–
शाश्वत वहॉ बसन्त नही है,
वहॉ सभी कुछ क्षण–भगुर है–
मिटने को ही वह अकुर है,

कमठ यही था, मूढ हृदय–सा–
मन मे जाग्रत अविचल भय–सा,
न्याय–नीति का प्रबल विरोधी–
अपनो तक का दृढ प्रतिशोधी,

भौतिकता मे लिप्त सदा था—
अहकार ही उसे बदा था,
पार्श्वनाथ के पथ पर आकर—
बना विघ्न—बाधा का पत्थर,

किन्तु सत्य जब मुस्काता है—
तृण असत्य का जल जाता है,
यही हुआ नव ज्योति जगी थी—
लौ से लौ की विभा लगी थी,

सत्य—सत्य था वहॉ चतुर्दिक—
भेद नही था कोई तात्विक,
सब सुरम्य, सब खिला—खुला था—
सात्विक रस से विश्व धुला था,

कमठ वहॉ कुछ कर न सका था—
भौतिकता मे सिद्ध—पका था,
तर्क—वितर्क जहॉ पर रहते—
वही हृदय रहते है दहते,

वहॉ न रहती शान्ति सुशीतल—
हृदय व्यग्र रहता है प्रतिपल,
कमठ क्षुब्ध था स्वय हृदय से—
पार्श्वनाथ की विमल विजय से,

✧ ✧ ✧ ✧

तत्त्व सभी है सुलभ भुवन मे—
जन—जन के इस अन्तर—मन मे,
जो भी जिसको प्रेय रहा है—
अपने पथ पर श्रेय रहा है,

उसने उसको गले लगाया–
सहज लक्ष्य सधान बनाया,
भौतिक नर तो भौतिकता का–
रहा उपासक मादकता का,

उसकी दृष्टि देह तक सीमित–
शुद्ध तत्त्व से वह है वचित,
कमठ लीन था अपनेपन मे–
क्षुद्र भाव के ही साधन मे,

तत्त्व सृष्टि का जो नश्वर है–
वह सब दृग के ही बाहर है,
इसे श्रेष्ठ जो रहा मानता–
ज्ञान तत्त्व को नही जानता,

कमठ इसे ही साध रहा था–
भौतिकता मे सदा बहा था,
इसीलिए वह मन से निर्मल–
रहता अपने प्रतिपल विह्वल,

धूल–धरा से उठकर सत्वर–
धन्य किए जो दया दिखा कर,
वही चरित–नायक है भू पर–
उनका ही वन्दन है रूचिकर,

होगा इससे प्राप्त सभी सुख–
कट जाएगा जन्म–मरण दुख,
आत्म–ज्योति से हैं ये मडित–
शुभ विचार सब इन पर आश्रित,

◇ ◇ ◇ ◇

नमन करो, सब कलुष मिटा लो–
ज्ञान ज्योति से हृदय खिला लो,
पार्श्वनाथ की जय–जय गाओ,
अपना जीवन सफल बनाओ।

षष्ठ सर्ग

एक–एक जो–
        जनम गया है,
काल स्वय ही–
        सहम गया है,

पार्श्वनाथ तो–
थे संचेतन,
वहाँ न था कुछ–
द्विविधा–बन्धन,

हर भव अपने–
पार किया था,
जीवो का–
उद्धार किया था,

भरत खण्ड के–
दक्षिण पथ पर,
पोतनपुर था–
राज्य मनोहर !

राजा थे–
अरविन्द यहाँ के,
शुभ चिन्तक थे–
सभी प्रजा के,

विश्वभूति थे–
सजग पुरोहित,
करते थे सब–
कार्य सुनिश्चित,

राज–काज के–
भार सधे थे,
राज–धर्म से–
सभी बँधे थे,

पुण्य कार्य होते–
थे अतिशय,
धर्म–ध्यान का–
करते सचय,

धर्म–परायण–
सभी सजग थे,
सदाचार से–
नही अलग थे,

सद्–गृहस्थ औ–
पुण्य–व्रती थे,
आस्थामय सब–
ज्ञान रती थे,

इन्हे प्राप्त दो–
पुत्र–रत्न थे,
मत–कुशाग्र ज्यो–
पुण्य–लग्न थे,

मेधावी थे–
ज्ञान प्रखर थे,
कर्म–तुला पर
दृढ तत्पर थे,

कमठ एक था–
भौतिकवादी,
मरुभूति थे–
सात्विकवादी,

दोनो मे कुछ–
मेल नही था,
दोनो का मत–
भिन्न कही था,

दोनो भाई–
थे प्रतिरोधी,
बन्धु–बन्धु के–
प्रबल विरोधी,

मरुभूति था–
निश्छल सात्विक,
किन्तु कमठ था–
वचक कायिक,

हर क्षण द्विविधा–
मे रहता था,
स्वार्थ–सिद्धि की–
ही कहता था,

मरुभूति ने–
सब समझाया,
कर्म–भक्ति औ–
ज्ञान बताया,

कहा कि गोचर–
जो है भू पर,
सब के सब है–
भगुर नश्वर,

पुण्य कार्य होते–
थे अतिशय,
धर्म–ध्यान का–
करते सचय,

धर्म–परायण–
सभी सजग थे,
सदाचार से–
नही अलग थे,

सद्–गृहस्थ औ–
पुण्य–व्रती थे,
आस्थामय सब–
ज्ञान रती थे,

इन्हे प्राप्त दो–
पुत्र–रत्न थे,
मत–कुशाग्र ज्यो–
पुण्य–लग्न थे,

मेधावी थे–
ज्ञान प्रखर थे,
कर्म–तुला पर
दृढ तत्पर थे,

कमठ एक था–
भौतिकवादी,
मरुभूति थे–
सात्विकवादी,

दोनो मे कुछ–
मेल नही था,
दोनो का मत–
भिन्न कही था,

दोनो भाई–
थे प्रतिरोधी,
बन्धु–बन्धु के–
प्रबल विरोधी,

मरुभूति था–
निश्छल सात्विक,
किन्तु कमठ था–
वचक कायिक,

हर क्षण द्विविधा–
मे रहता था,
स्वार्थ–सिद्धि की–
ही कहता था,

मरुभूति ने–
सब समझाया,
कर्म–भक्ति औ–
ज्ञान बताया,

कहा कि गोचर–
जो है भू पर,
सब के सब है–
भगुर नश्वर,

आत्म–तत्त्व पर–
शक्ति महत् है,
सब असत्य यह–
केवल सत् है,

यही साधना–
सफल रहेगी,
सृष्टि इसी से–
शिक्षा लेगी,

नश्वर जीवन–
मिट जाएगा,
जीव निरन्तर–
पछताएगा,

बडे पुण्य के–
फल से सुन्दर,
मानव का तन–
मिलता भू पर,

इसको व्यर्थ न–
जाने देना,
यही ज्ञान का–
सर्बस लेना,

आज यहॉ तक–
बढते आए,
अपने को पर–
समझ न पाए,

सब योनि मे–
श्रेष्ठ यही है,
इससे बढकर–
जीव नही है,

इसके आगे–
सब है निर्बल,
यही मोक्ष का–
साधन–केवल,

नर तन से नर–
बढ सकता है,
मोक्ष–पंथ खुद–
गढ सकता है,

बडे भाग्य से–
प्राप्त हुआ है,
बन्धन यही–
समाप्त हुआ है,

इसके पहले–
जड–जीवन था,
बॅधा कीर का–
उत्पीडन था,

नर तन लेकिन–
प्राप्त हुआ जब,
सचेतन ने–
प्राण छुआ तब,

अब उन्मुक्त–
द्वार है आगे,
क्या अपनाए–
किसको त्यागे,

सोच–समझ कर–
पग धरना है,
खुद उत्कर्ष–
यहॉ करना है,

तभी मनुज–तन–
सार्थक होगा,
मोक्ष–लक्ष्य का–
साधक होगा

इसीलिए भव–
नश्वरता से,
दृष्टि हटा लो–
भगुरता से,

शाश्वत शीतल–
ज्ञान–प्रभा का,
दीप जागता–
शक्ति–विभा का,

उसकी ज्योति–
जगेगी निश्छल,
ज्योतित होगा–
भू का प्रतिपल,

मरुभूति ने–
कही ज्ञान की,
बात अलौकिक–
भक्ति–ध्यान की,

किन्तु कमठ का–
हृदय न डोला,
अहकार से–
ही वह बोला,

यह सब व्यर्थ–
निरर्थक–सा है,
इससे भव की–
समता क्या है ?

भव तो अविरल–
चलता रहता,
पथी पथ पर–
सब कुछ सहता,

जिसमे बल है–
विघ्न हटाकर,
फूल खिलाता–
दृग मे मनहर,

हर बाधा को–
दूर भगाता,
सुख सौभाग्य–
सदा अपनाता,

ये अनमोल–
तत्त्व है, इनको,
बडे भाग्य से–
मिलते नर को,

सब कुछ क्षण भर–
मै मिल जाते,
वे ही जन है–
सब कुछ पाते,

दृश्य अगोचर
कौन देखता ?
आगे क्या हो
कौन लेखता ?

आज अभी जो–
वर्त्तमान है,
मेरा निश्चय–
यही ज्ञान है,

सब कुछ यही–
शेष है भू पर,
नही शेष कुछ–
इसके ऊपर,

वर्त्तमान को
सदा सजाओ
अपना जीवन
सुखद बनाओ

इससे आगे–
की जो कहते,
निरे मूर्ख है–
भ्रम मे रहते,

दुनिया उनकी–
नही सुनेगी,
भला–बुरा वह–
स्वय गुनेगी,

✧ ✧ ✧ ✧

कमठ कमठ–सा–
मूढ बना था,
उसका तन–मन–
पृथुल घना था,

मरूभूति से–
बोला देखो,
सृष्टि यही है–
सम्मुख लेखो,

इससे आगे–
की मत बोलो,
अपने को तुम–
भू पर तोलो,

कौन यहॉ पर–
फिर आता है ?
कौन जीवन को–
बहलाता है ?

जो कुछ है बस–
सत्य यही है,
वर्त्तमान है–
जहॉ मही है ।

✧ ✧ ✧ ✧

इसी तरह की–
बाते कह कर,
भ्रमित घूमता–
कमठ धरा पर,

किन्तु कमठ से–
भिन्न भाव मे।
रहते थे–
मरुभूति गॉव मे,

इसीलिए–
उनके जीवन मे,
नव प्रकाश था–
जागा मन मे,

परम पवित्र–
हृदय था उनका,
मर्म समझते–
थे कण–कण का,

उनका जीवन–
सुखद बना था,
दिव्य भाव मे–
सदा सना था,

वर्त्तमान से–
आगे बढकर,
हुए जीव फिर–
ज्ञानी सत्वर,

अपने को वे–
भूल न पाए,
रहे हृदय मे–
ध्यान लगाए,

कमठ द्वेष से–
रहा भटकता,
बाधाओ मे–
रहा अटकता,

मरूभूति ने–
सब से निर्मल,
ज्योति जगाई–
जगकर निश्छल,

उनका ही हम–
करते वन्दन,
ग्रहण करो प्रभु–
यह अभिनन्दन।

सप्तम् सर्ग

कमठ पाप की घृणित क्रोड मे—
रहा अहर्निश,
उसके मन मे विपुल कलुश की—
जलती आतिश,

कुछ भी देख न पाता था वह–
मुँदे नयन थे,
कर्म अमानुष करने को ही–
बढे चरण थे,

मरूभूति की भिन्न प्रकृति भी–
भाव अलग था,
भाई के दुष्कृत्यो से वह–
बहुत अलग था,

सदा सत्य औ न्याय नीति का–
करता पालन,
मन से शुभ विचार का करता–
था अनुपालन,

कमठ घृणित कर्मो मे अविरल–
गिरता आया,
ऐसा ही पथ उसने जीवन–
में अपनाया,

मरूभूति की पत्नी पर–
आसक्त हुआ था,
श्रेय प्रदायक शुभ्र पथ से–
व्यक्त हुआ था,

कुछ दिन मे ही मरूभूति फिर–
जान गए थे,
दुष्ट कमठ की लीला सब–
पहचान गए थे,

लगे सोचने, मौन रहूँ तो–
पाप बढेगा,
भ्रष्टाचारी इस समाज के–
शीश चढेगा,

धर्म–नीति की सबल प्रतिष्ठा
मिट जाएगी,
घातक कृत्यो से धरती भी–
क्या पाएगी ?

माना इसमे अपनी भी है–
हानि मान की,
अपने सोदर भाई की भी–
छवि महान की,

लोग घृणा से मुँह बिचकाये–
यहाँ दिखेगे,
ऐसा भी हो, लोग मुझी से–
बदला लेगे,

तर्क उठा था मरुभूति के–
मन मे भीषण,
सोच रहा था न्याय–नीति मे–
डूबा प्रतिक्षण,

निश्चय किया कि नृप को जाकर–
हाल बताऊँ,
कितना कर्म कमठ का घातक–
रूप दिखाऊँ,

मरूभूति ने महाराज को–
सब बतलाया,
घातक पातक कर्म कमठ का–
उन्हे दिखाया,

राजाज्ञा से दुष्ट कमठ को–
मिला दण्ड था,
मुडित सिर सब नगर घुमाया–
यह प्रचण्ड था,

राजाज्ञा थी कोई इसको–
टाल न सकता,
किए कर्म पर कमठ हमेशा–
रहा बिचकता,

कुछ दिन बाद नगर से बाहर–
चला अजाने,
एक वृक्ष के नीचे बैठा–
कुछ सुस्ताने,

उसी राह से सत–तपस्वी–
कुछ जाते थे,
जो जिज्ञासु मिलते उसको–
सिखलाते थे,

पास उन्ही के कमठ पधारा–
किया निवेदन,
मुझे ज्ञान की दीक्षा दे दे–
करूणा–कारण,

मिली ज्ञान की दीक्षा, लेकिन–
हृदय–कलुष था,
क्रोध–घृणा के दहन–दाह मे–
जला वपुष था,

कमठ साधु का वेश बनाकर–
था तप उद्यत,
तंत्र–योग से साध रहा था–
मानस उद्धत,

मरुभूति को खबर मिली जब–
आया चलकर,
अपने भाई से मिलने को–
होकर तत्पर,

बडा स्नेह था, विह्वल दृग मे–
नव आशा थी,
बन्धु–मिलन की मनमे उत्कट–
अभिलाषा थी,

चला कि सोदर बन्धु मिलेगा–
मन बिहँसेगा,
बहुत दिनो के बाद नयन का–
अश्रु हँसेगा,

मरुभूति के मन मे केवल–
पुण्य जगा था,
अपने भाई के दर्शन पर–
हृदय लगा था,

किन्तु कमठ मे अब भी ज्वाला–
धधक रही थी,
बना तपस्वी किन्तु ह्रदय मे–
ज्योति नही थी,

मरूभूति जब आए उसको–
वहाँ देखकर,
जगा कमठ का वैर पुरातन–
क्रोध भयकर,

एक बडा–सा शिला–खण्ड ले–
मारा कस कर,
मरूभूति मर गए अचानक–
तुरत वही पर,

अन्तिम क्षण थे शान्त–चित कुछ–
द्वेष नही था,
दुष्ट कमठ पर भी उस क्षण मे–
रोष नही था,

शान्त वृत्ति से हस्त–योनी को–
ग्रहण किया था,
ऋषि–मुनियो के स्वस्ति वचन को–
विहँस लिया था–

सुख से यही विचरते निशि–दिन–
परम शान्ति थी,
शुद्ध–प्रबुद्ध ह्रदय मे प्रभु की–
दिव्य कान्ति थी ।

अष्ठम् सर्ग

हस्त योनि मे मरुभूति का—
जीव विचरता रहता,
रम्य मनोरम विपिन मिला था—
सुख से सब कुछ सहता,

कभी किसको नही सताता–
विटप तले रह जाता,
रूखे–सूखे वृन्तो से ही–
अपनी क्षुद्या मिटाता,

नदी–तीर पर जाकर पानी–
पी लेता जी भर कर,
वृत्ति हृदय की शान्तिमयी थी–
था उद्वेग न तिलभर,

खिले सुमन थे तरह–तरह के–
देख उन्हे हर्षाता,
स्वय सूड से पानी लाकर–
उनको रोज पटाता,

यदा–कदा जब साधु–तपस्वी–
कोई भी आ जाते,
किसी विटप के नीचे अपनी–
जब वे धुनी रमाते,

मरूभूति का श्रृगी–प्राणी–
उनको सुख पहुँचाता,
वन्य कुसुम की डाली लाकर–
उनको खुद दे जाता,

ऋषि–मुनियो के साथ–साथ ही–
सदा डोलता रहता,
परम शान्ति के दिव्य लोक मे–
विचरण सुख से करता,

किसी जीव को कष्ट न देता–
सब मे अपनापन था,
सभी तरह से भू पर उसका–
निश्छल यह जीवन था,

विटप सूख कर जो गिर जाते–
उसके भोज्य वही थे,
हरी–मृदुल कोमल पत्ती से–
कोई लोभ नही थे,

वन–प्रदेश के जीव–जन्तु सब–
थे उसके ही सहचर,
उसकी करूणा की छाया मे–
सुख से रहते वनचर,

नही किसी से द्वेष कही था–
नही कही उत्पीडन,
सभी वन्य प्राणी के सग था–
मधुर स्नेह का बन्धन,

मरूभूति सारग जीव मे–
रहा परम सुख पाता,
शान्त भाव से रहा विपिन मे–
सबको सुख पहुँचाता,

✧ ✧ ✧ ✧

काल–चक्र मे कमठ हुआ था–
नर से सर्प भयानक,
प्रबल–प्रचण्ड–प्रकोप की ज्वाला–
का था वह अधिनायक,

उठता था फुत्कार मारकर–
जब भी कोई आता,
अपने भीषण विष–दशन का–
सब को जोर दिखाता,

लता–गुल्म सब सूख गए थे–
तरू–तरू थे मुरझाये,
महा विषैले सर्प–श्वास से–
वन–प्राणी अकुलाये,

कही न कुछ भी शेष बचा था–
त्राहि मची थी भारी,
फूट रही थी प्रलय–नाग से–
विष की ही चिनगारी,

जिसे देखता डॅस लेता था–
दया न थी कुछ मन मे,
महा प्रलय का घूर्णि–नाद था–
व्याप्त चतुर्दिक वन मे,

मरूभूति का फील–जीव जब–
एक दिवस था आया,
इसे देखकर सर्प–राज का–
क्रोध ज्वार लहराया,

पागल–सा फुत्कार मार कर–
फण फैलाया भीषण,
जब तक कुजर सॅभले, उस पर–
पडे कई विष–दशन,

विष का ऐसा ज्वार चढा वह–
द्विरद नही बच पाया,
बीच विपिन मे सर्प–दंश से–
उसने प्राण गँवाया ,

◇ ◇ ◇ ◇

किए कर्म का फल जीवन मे–
व्यर्थ नही है जाता,
शुद्ध आचरण का प्राणी तो–
मन वांछित फल पाता,

मरूभूति का जीव–करी वह–
देव–लोक मे आया,
अपने पुण्य–कर्म का उसने–
सारा वैभव पाया,

श्रेष्ठ यही है जीवन मे हम–
उन्नत पथ अपनाएँ,
स्वार्थ भाव से ऊपर उठकर
सबका कुशल मनाएँ।

नवम् सर्ग

मरुभूति का जीवन निरन्तर–
पथ पर बढता आया,
पुण्य–लोक का अति विशिष्ट फल–
उसने था अपनाया,

जहाँ रहा, था परम ज्योति का–
साथ हृदय मे हरदम,
हर योनी मे रहा हृदय से–
चलता पुण्य उपक्रम,

अपने विमल पराक्रम का तो–
सब को ही फल मिलता,
शुभ भावो के परिचालन से–
अम्बुज–अम्बक खिलता,

अगजग तक यह सृष्टि सदा है–
कर्मो से परिचालित,
जिसका जैसा कर्म उसे फल–
होता वही उपार्जित,

दुष्ट हृदय मे पाप–शाप की–
अग्नि सदा ही जलती,
कदम–कदम पर अकथ भाव की–
लहरे खूब मचलती,

जीव इसी मे पडा सत्त्व से–
दूर चला जाता है,
शुभ्र कर्म की ओर कभी वह–
लौट नही पाता है,

क्रोध शत्रु है शुभ कर्मो का–
अग्नि–सद्दश धुँधुआता,
पुण्य हृदय मे जगता है तब–
क्रोध शान्त हो पाता,

दावानल ज्यो वन के वन को–
क्षण मे क्षार बनाता,
उसकी लपटों मे ज्यो साबित–
वृक्ष नही रह पाता,

कोमल तृण–तरू–दूर्वादल तक–
भस्मिभूत हो जाते,
ज्वालामय उस प्रबल लहर मे–
सब कुछ ज्यो खो जाते,

वैसे ही जब क्रोध हृदय मे–
जगता, सब मिट जाता,
शुभ लक्षण का चिह्न न कोई–
अन्तर मे रह पाता,

क्रोध मनुज का प्रबल शत्रु है–
कदम–कदम पर बाधक,
कपट–मूर्त्ति है यही हृदय मे–
सर्वगुणो का घातक,

जिसने इस पर विजय प्राप्त की–
सब कुछ वह पा जाता,
कठिन परिस्थितियो मे भी वह–
अपनी राह बनाता,

✧ ✧ ✧ ✧

मरूभूति ने क्रोध जीतकर–
सब कुछ सुगम बनाया,
ऊर्ध्वमुखी सब दिव्य भवो से–
ऊपर उठता आया,

किन्तु विश्व मे प्रकृत–नियम से–
सब परिचालित होते,
जब तक मोक्ष न पाता, तब तक–
पा–पा कर सब खोते,

मरुभूति भी दिव्य लोक का–
देव बना था सुन्दर,
इस भव से फिर भू पर आया–
कुँअर सलोना बनकर,

उत्तरार्द्ध के विधुतगति नृप–
की वह साध्वी रानी,
तिलकावती बनी थी माता–
ज्ञानवती कल्याणी,

मरुभूति का जीव प्रखर था–
निशिदिन बढ़ता आया,
करणवेग था नाम भुवन मे–
यश–गौरव सब पाया,

परम तपस्वी साधु–पुरुष–सा–
इसका जीवन–पथ था,
दिव्य ज्योति थी इसके दृग मे–
मन मे स्नेह अकथ था,

सभी प्राणियो पर यह अविरल–
दया–भाव दिखलाता,
चीटी जैसे जीवो को भी–
कष्ट नही पहुँचाता,

जो भी मिलते सदाचार से–
अपना उन्हे बनाता,
मगल–क्षेम सभी जीवो का–
उठकर रोज मनाता,

किसी नयन मे पीडा का जब–
अश्रु दिखाई पडता,
उसके दु ख हरण की खातिर–
सब कुछ खुद ही करता,

जन–जन मे वह अपने जैसा–
सबका था प्रिय–भाजन,
सभी ओर होते थे उसके–
विमल गुणो के गायन,

सौम्य मूर्त्ति था बडा मनोरम–
दिव्य छटा छिटकाती,
उसे देखते किसी देव की–
याद अचानक आती,

जो भी मिलते तुरत विनत हो–
पथ पर झट झुक जाते,
उन्हे देखते आत्म–भाव से–
जन–जन तक मुस्काते,

मरुभूति का जीवन विरल था–
सभी गुणो का स्वामी,
लगता जैसे मूर्त्त रूप हो–
कोई अन्तर्यामी,

गुण ही गुण हो जहाँ, वहाँ पर–
दृष्टि दोष क्या होगा ?
उसका जीवन समरसता की–
दिव्य विभा–सा होगा,

दिव्य–शिखा–सी उसकी आभा–
सदा अकम्पित भू पर,
धन्य–कृतार्थ हुए सब इनके–
पावन पग को छूकर,

आज जलन–ज्वाला मे झुलसे–
मानव तडप रहे है,
शीतल करूणा की छाया हित–
प्रतिपल कलप रहे है,

पुण्य–व्रती ये प्राणी भू पर–
सबको राह दिखाते,
इनके पद–वन्दन से ही नर–
अपना तिमिर मिटाते,

आओ, हम सब अन्तर्मन से–
इनका यश दुहराएँ,
इनके पूजन–अर्चन से ही–
मन का दीप जलाएँ,

इससे ही भव सुखद बनेगा–
ताप मिटेगे मन के,
सारे बन्धन कट जाएँगे–
निर्मम जन्म–मरण के ।

दसम् सर्ग

जिसके मन मे द्वेष घृणा है–
उसकी गति रूक जाती,
आशा और दुराशा मे ही–
उसकी मति भरमाती,

ऐसे नर के मन मे अविरल–
क्रोध जगा रहता है,
अहकार के मद से बोझिल–
वाणी वह कहता है,

उसके शब्द–शब्द से मानो–
जलते है अगारे,
उसके मुँह से सदा फूटते–
ज्वाला के फब्बारे,

चित्त विडम्बित रहता प्रतिपल–
लहरो सा आलोडित,
एक लीक पर कभी न टिकता–
विह्वल–खग–मन–खण्डित,

सदा भटकता रहता पथ पर–
जैसे हो खग व्याकुल,
निकल न पाता अन्ध गुफा से–
जैसे नर भावाकुल,

नही ठौर मिल पाता उसको–
रह–रह कर पछताता,
तरह–तरह की पीडाओ से–
रहता है अकुलाता,

ऐसे मे भी क्रोध शत्रु–सा–
साथ लगा ही रहता,
ऊपर से जो दिखे, किन्तु वह–
भीतर–भीतर दहता,

क्रोध पाप का मूल, मनुज से–
निर्धिन कर्म कराता,
नर को अपने वश मे करके–
तरह–तरह भटकाता,

एक–एक से नर–रत्नो को–
इसने नष्ट किया है,
पुण्य पथ से पथिक–गणो को–
भी पथ–भ्रष्ट किया है,

क्रोध आग है महा भयकर–
इसमे जो पड जाता,
उसकी आत्मिक उन्नति का सब–
मार्ग रूद्ध हो जाता,

कमठ क्रोध का ज्वलित रूप था–
सॅभल नही वह पाया,
क्रोध विवश होकर ही उसने–
कष्ट अहर्निश पाया,

जहॉ कही जो रूप मिला वह–
रहा सदा भरमाता,
दारूण दुख की वैतरणी मे–
डूब–डूब उतराता,

युग–युग तक वह सर्प–योनि मे–
कई बार था आया,
घोर अधोगति मे ही पडकर–
उसने प्राण गॅवाया,

संतों ने उपदेश दिया, पर–
नही हृदय मे उतरा,
धर्म–तत्त्व से रहा विखण्डित–
सब दिन उखडा–उखडा,

अपनी अह वृत्ति से बढकर–
नही कही कुछ, जाना,
सभी तरह सर्वज्ञ भुवन मे–
अपने को ही माना,

प्राणि–मात्र से द्वेष ठानने–
को नित रहता बैठा,
जडी भूत पाखण्ड द्वेष से–
अपने मे था ऐठा,

इसी तरह दिन रहे बीतते–
कमठ रहा अकुलाता,
क्रोधानल की विकट लपट मे–
भीषण कष्ट उठाता,

सौन्ध्र विपिन मे बना हुआ था–
जीव कमठ का विषधर,
करता था उत्पात भयकर–
क्रोधनल मे जलकर,

उस अरण्य के पशु–पक्षी तक–
थर–थर कॉप रहे थे,
अपने सम्मुख महाकाल–सा–
उसको भॉप रहे थे,

कई कोस तक वन मे कुछ भी–
साबित नही बचा था,
उसके कारण ही जगल मे–
हाहाकार मचा था,

भू पर कोई विहगन आता–
अपने तरू–कोटर से,
बडे–बडे गज–व्याघ्र–महिष तक–
भाग गए थे डर से,

ऐसे ही मे एक दिवस जब–
भीषण ऑधी आई,
लगता था ज्यो स्वय प्रकृति ने–
ली है अब अगडाई,

बडे–बडे ताडो–से तरूवर–
गिरने लगे उखडकर,
पर्वत की चट्टान हजारो–
टूटी तडक–तडक कर,

धूत धरा की उठकर मानो–
कर कल्लोल रही थी,
अन्धकार छा गया भयानक–
धरती डोल रही थी,

ऐसे मे ही एक शिला थी–
गिरी सर्प के ऊपर,
जीव कमठ का आहत होकर–
मरा शीघ्र ही भू पर,

जो जैसा करता है उसको–
फल वैसा ही मिलता,
कलुष हृदय का कर्म अपावन–
नहीं बहुत दिन चलता,

प्रकृति स्वय ही राह बनाती–
दुष्ट हृदय मिट जाता,
रजनी का तमतोम हटाकर–
दिनमणि खुद मुस्काता,

जीव कमठ का सर्प–योनि से–
भी नीचे था आया,
तरह–तरह के कष्टो मे था–
भीतर से घबडाया,

भील बना था–रक्त मास से–
उदर–पूर्त्ति था करता,
घोर घमण्ड–घिरा नित रहता–
नही किसी से डरता,

प्रकृति स्वय सतुलन धरा का–
रखती सदा बनाए,
कैसे भी अन्यायी सम्मुख–
कभी नही टिक पाए,

✧ ✧ ✧ ✧

एक समय जब पार्श्वनाथ थे–
ध्यानावस्थित वन मे,
जनम–जनम का परम विरोधी–
आया था उस क्षण मे,

दुष्ट मेघमाली ने आकर–
विकट रूप दिखलाया,
महाभयकर हाथी बनकर–
सबको खूब डराया,

सूड उठा कर पकडा प्रभु को–
जी भर कष्ट दिया था,
तीक्ष्ण रूप से खूब प्रताडित–
उसने उन्हे किया था,

किन्तु पराजित हुआ स्वय ही–
अपने भाग्य कुटिल से,
और पुन कुछ नयी दुष्टता–
दिखलाई थी छल से,

व्याघ्र, सिह और चीता बनकर–
प्रभु पर वह था झपटा,
किन्तु स्वय ही रहा कुकर्मो–
मे वह लिपटा–लिपटा,

आखिर उसने सोचा प्लावन–
जल का ही अब ला दे,
उसमे अविचल पार्श्वनाथ को–
क्षण मे तुरत बहा दे,

लगा बरसने पानी झर–झर–
बिजली लगी कडकने,
तत्क्षण पूरा वन–प्रान्तर ही–
तड–तड लगा तडकने,

मूसलाधार लगी थी वर्षा–
पानी बढता आया,
ध्यान मग्न प्रभु के आनन तक–
जल–ही–जल लहराया,

तुरत वहॉ धरणेद्र पधारे–
वे थे कुछ अकुलाए,
प्रभु के नीचे सरसिज, ऊपर–
अदि–फण छत्र लगाए,

जल के सब उपसर्गो से अब–
मुक्त हुए थे प्रभुवर,
कुटिल मेघमाली भी अब था–
लज्जित अपने ऊपर,

✧ ✧ ✧ ✧

नमन करो उस परम शक्ति को–
जिसके सब अनुरागी,
सबका ही कल्याण करेगी–
वह है अन्तर्यामी।

ग्यारह सर्ग

मरूभूति का जीव निरन्तर–
विकसित होता आया भू पर,
　　　　देव–लोक मे रहा विचरता–
　　　　पुण्य–कार्य था प्रतिदिन करता,

मन से अतिशय शुद्ध–विमल था–
पुण्य–व्रती औं बहुत सरल था,
नही किसी को दुख पहुँचाता–
प्राणि–मात्र का मान बढाता,

किसी डाल की भी पत्ती पर–
हाथ न देता था रत्ती भर,
कहता, इसको कष्ट न हो कुछ–
वही बहुत है, मिलता जो कुछ,

•अग्नि–तत्त्व के आराधन मे–
बहुत श्रेष्ठ था निज साधन मे,
दया सभी पर बरसाता था–
राह सभी को दिखलाता था,

साधु–सत जो भी आते थे–
खूब प्रसन्न हृदय जाते थे,
सब मे था विश्वास अलौकिक–
सभी तरह से सब थे सात्त्विक,

✧ ✧ ✧ ✧

प्रतिदिन विकसित होता आया–
मन का कल्मष धोता आया,
उतरा जब वह दिव्य–तबक से–
धुला हृदय था पुण्य–उदक से,

तुच्छ विकार नही था मन मे–
शान्ति सुशीतल थी जीवन मे,
सब गुण से सम्पन्न हृदय था–
जन्म–मरण मे मन निर्भय था,

उदयाचल–सा विकसित आनन–
नन्दन वन था मन का ऑगन,
दुख परिताप नहीं था तिलभर–
कोई भार नही था दिल पर,

सब पुनीत–पावन लगता था–
पुण्य प्रकाश सदा जगता था,
हृदय–हृदय मे प्रेम भरा था–
सबका मगल–क्षेम भरा था,

प्राणि–मात्र थे मन–से अपने–
रहते बनकर दृग के सपने,
यही काल था, विश्वपुरम के–
वज्रवीर्य थे नृपति भुवन के,

पुण्यवान औ नीति–विचारक–
बडे कुशल थे सब गुण–धारक,
इनकी रानी पुण्यवती थी–
धर्म–परायण ज्ञान–व्रती थी,

इसी कुक्षि मे जीव उतरकर–
मरुभूति का आयाा सत्वर,
जन्म हुआ जब दिव्य प्रभा थी–
व्याप्त चतुर्दिक पुण्य–विभा थी,

मगल छवि सब ओर खिली थी–
धर्म–भावना घुली–मिली थी,
भूपित का आनन्द बढा था–
मगलमय उन्माद चढा था,

लहर–खुशी की छाई घर–घर–
उडे केतु अम्बर मे फर–फर,
सबने मगल शख बजाये–
मन मे अविकल भाव जगाये,

कुछ दिन बीते इसी तरह से–
गूँजे उत्सव फिर घर–घर से,
नाम करण का शोर बडा था–
बज्रनाभ ही नाम पडा था,

बालकपन से ही आकर्षक–
लगती थी छवि, मधु का वर्षक,
सबके ही थे परम सनेही–
लगते भव्य देवता–से ही,

इनकी तुलना कही नही थी–
अपनी उपमा स्वय यही थी,
बढते मन के पुण्य–सरीखे–
सबको राज महल मे दीखे,

तीव्र कुशाग्र बुद्धि अवधाता–
बने शीघ्र सब कुछ के ज्ञाता,
सारी विद्या जान गए थे–
तत्त्व सभी पहचान गए थे,

नीति–निपुण औ धर्म–वान थे–
सभी तरह से ये महान थे,
इनसे गर्वित नृप रहते थे–
सबसे इनके गुण कहते थे,

विश्वपुरम मे चहल–पहल थी–
पूरी धरती दुग्ध–धवल थी,
तरह–तरह से खुशी मनाते–
अन्तर का उद्गार दिखाते,

लोग–बाग सब मोद मगन थे–
व्यक्ति–व्यक्ति के खुले नयन थे,
पुण्य हृदय मे जब जगता है–
भुवन सलोना ही लगता है,

आओ, हम सब पुण्य जगाएँ–
अपने प्रभु का यश दुहराएँ,
इससे भू का ज्ञान बढेगा–
आत्मिक बल परवान चढेगा।

बारह सर्ग

बज्रनाभ अब हुए युवक थे–
कार्य–कुशल औ बडे अथक थे,
राज–काज के सचालन मे–
प्रजा–जनो के भी पालन मे,

समय दिया करते थे अविरल–
प्रतिपल मन से होकर अविचल,
इनके पावन गुण विशेष से–
निश्छल मन औं साधु–वेश से,

सभी लोग थे बहुत प्रभावित–
रहे स्नेह से इनके आश्रित,
बुद्धि विमल थी, शक्ति अतुल थी–
मन मे शका नही चपल थी,

जहॉ कही भी जाते, इन पर–
फूल बरसते रहते झर–झर,
सभी लोग थे इन्हे मानते–
प्रजा–हितैषी सदा जानते,

मत्री–गण औ परिजन–पुरजन–
सब करते थे इनको वन्दन,
वज्रवीर्य थे बडे प्रफुल्लित–
प्राप्त हुए सुत महिमा–मडित,

सोचा, अब क्या काम करेगे ?
अब तो हम विश्राम करेगे,
पुत्र योग्य है सभी तरह से–
ऊपर है सब द्वन्द्व–कलह से,

कोई उँगली नही उठाता–
इस पर कोई दोष न लाता,
बडे भाग्य से मैने पाया–
वज्रनाभ–सा सुत–मनभाया,

भू–पति ने फिर मत्री–गण से–
किया विचार सभी गुरूजन से,
और एक दिन साज सजाकर–
भेरी–दुंदुभि–शख बजाकर,

वज्रनाभ का तिलक महोत्सव–
हुआ धरा पर मगल–उद्भव,
वज्रनाभ को राज्य सौप कर–
भू–पति आए वन मे सत्वर,

दीक्षा ली निर्ग्रन्थ श्रमण की–
सब कष्टो के मूल हरण की,
सुख से किया विहार विपिन में–
सुत को देकर राज सुदिन मे,

✧ ✧ ✧ ✧

वज्रनाभ का राज्य विमल था–
उनका पुण्य–प्रताप अचल था,
सभी ओर सुख शान्ति भरी थी–
भू पर ज्यो अलका उतरी थी,

कही द्वेष औ घृणा नही थी–
शष्य–श्यामला पूर्ण मही थी,
धर्म–भाव मे सभी लीन थे–
कोई तिलभर नही दीन थे,

राज–कोष मे वृद्धि हुई थी–
सभी ओर समृद्धि हुई थी,
सुख–सौभाग्य बढे थे भू पर–
राजा और प्रजा के भास्वर,

वज्रनाभ का मन प्रसन्न था—
नही एक भी नर विपन्न था,
सुख से पल—छिन बीत रहे थे—
जीवन के घट रीत रहे थे,

नृप ने सोचा चले विपिन मे—
सदा चैन है प्राकृत क्षण मे,
यो तो सब दिन राज महल मे—
राज—काज की ही हलचल मे,

बीत रहा है समय सुहाना—
भव का अब है कौन ठिकाना ?
सब को ही यह समझाए थे—
यही सोचकर अकुलाए थे,

✧ ✧ ✧ ✧
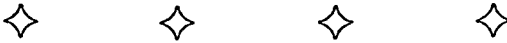
चले विपिन मे साज सजा के—
राजा ही थे। शख बजा के,
धूम मची थी नृप आए है,
कुछ सदेश मधुर लाए है,

भील—भीलनी सभी जुडे थे—
रूपए—पैसे खूब लुटे थे,
नृप ने सबको मान दिया था—
सोना—चॉदी दान दिया था,

मोद—मगन सब नाच रहे थे—
सब भर मधुर कुलाच रहे थे,
इसी भीड मे जीव कमठ का—
भील बना बैठा था सटका,

वज्रनाभ पर नजर पडी जब–
क्रोध अचानक जगा वही तब,
तीर निकाला, साधा कसकर–
छोड दिया नृप पर ही हॅसकर,

वज्रनाभ को तीर लगा था–
फिर भी उनका चित्त जगा था,
बधिक भील को आशिष देकर–
छोडे प्राण नृपति ने भू पर,

वज्रनाभ थे मरुभूति के–
जीव–सुज्ञाता सब विभूति के,
यह तो उनका अतिम भव था–
चरम लक्ष्य का अब उद्भव था,

अश्वसेन नृप थे भूतल पर–
जनमे आकर उनके ही घर,
माटी को सम्मान दिया था–
जन–जन का उत्थान किया था,

✧ ✧ ✧ ✧

प्रकृति विचित्र बडी है इसकी–
लीला खान बनी है रस की,
यहॉ हृदय जो ऊर्ध्वमुखी है–
सभी तरह से वही सुखी है,

वज्रनाभ थे सुख–सागर मे–
आए चरम लक्ष्य के घर मे,
जीवन का उत्कर्ष यही था–
प्राणि–मात्र का हर्ष यही था,

✧ ✧ ✧ ✧

आओ, हम सब विनय सुनाएँ–
उनके यश का दीप जलाएँ,
इससे भव को शान्ति मिलेगी–
हृदय–हृदय की कली खिलेगी।

तेरह सर्ग

भरत–खण्ड मे काशी नगरी–
बडी सुहानी लगती है,
गगा–तट पर जोत पुण्य की–
सब दिन जगती रहती है,

छटा यहाँ की अनुपम लगती–
सब कुछ ही मन–भावन है,
बडे चाव से स्वय प्रकृति ने–
इसे बनाया पावन है,

सुन्दर मनहर यहाँ सरोवर–
अम्बुज जिसमे खिलते है,
वैभव से परिपूर्ण धरित्री–
शुद्ध भाव ही मिलते है,

लोग–बाग सब ज्ञान–परायण–
न्याय–नीति के पालक है,
सदाचार औ धर्म–धुरन्धर–
सर्व–गुणो के धारक है,

इक्ष्वाकु वश के अश्वसेन है–
इसके आज महीप बने,
पुण्यमयी काशी नगरी के–
कर्म–मनस्वी–दीप बने,

दानवीर है, पराक्रमी है–
वीर–शिरोमणि ज्ञानी है,
राजनीति मे पारगत औ–
दयावान तप–ध्यानी हैं,

इनके जैसी ही है रानी–
वामादेवी ज्ञानवती,
पतिव्रता अति भद्र सुशीला–
करूणा की मृदु मूर्त्तिमती,

ज्ञान–कुशल है, महाराज को–
शुभ सहयोग दिया करती,
राज–काज का भार प्रेम से–
उनके साथ लिया करती,

इसी कुक्षि मे मरूभूति का–
पावन जीव प्रविष्ट हुआ,
सहसा वामा देवी का वह–
निर्मल रूप विशिष्ट हुआ,

रानी को फिर चौदह सपने–
अनायास दिख जाते है,
पहले श्वेत गजेन्द्र और फिर–
वृषभ–केसरी आते है,

स्वय महालक्ष्मी थी सम्मुख–
पुष्पो की द्वय माला थी,
सूर्य–चन्द्र ध्वज–कुम्भ–सरोवर–
धूम रहित दृढ ज्वाला थी,

क्षीर सिन्धु औ देव–देवियो–
युक्त विमान मनोहर था,
रत्नो की थी राशि अपरिमित–
स्वप्न अनोखा सुन्दर था,

वामादेवी के अन्तर मे–
जब यह सपना लहराया,
शुभ शरीर पर नव प्रकाश का–
शकुन सुहावन मुस्काया,

मधुर प्रात की उस बेला मे–
नही पुन सो पाई थी,
उसके अगो–प्रत्यगो पर–
खिली नयी अरूणाई थी,

◇ ◇ ◇ ◇

अश्वसेन ने राज महल मे–
पडित जन थे बुलवाए,
रानी को जो स्वप्न दिखे थे,
वे सब उनका बतलाए,

गणना करके बोले सब जन–
बडा सुहावन सपना है,
मर्त्य भुवन मे सुख अमर्त्य ही–
देगा, यह मत अपना है,

अपने राज्य क्षेत्र की सीमा–
का होगा विस्तार अतुल,
राज–कोष के साथ बढेगा–
प्रतिदिन सुख सौभाग्य विपुल,

पुत्र–रत्न–नर–श्रेष्ठ मिलेगा–
सदा रहेगा धर्म–मुखी,
उसकी निर्मल ज्ञान–सुरभि से–
होगा यह ससार सुखी,

विप्र महाजन गुरू जनो को–
आदर मान यथेष्ट मिला,
सबको नृप से दान यथोचित–
मुक्ता–मणि का श्रेष्ठ मिला,

पौष कृष्ण की दशमी तिथि को–
शुभ नक्षत्र विशाखा मे,
जन्म लिया बालक ने अनुपम–
दिव्य ज्योतिमय आभा मे,

धरती हुई प्रसन्न, गगन तक–
लहर खुशी की छाई थी,
स्वर्ग–लोक आनन्द–मगन था–
बजती शुभ शहनाई थी,

पार्श्व पडा था नाम सुवन का–
सब मे था वह प्यार भरा,
राज भवन मे वह लगता था–
जीवन का उद्गार भरा,

उसकी तुतली बोली सुनकर–
लोग बलैया लेते थे,
साधु–सत और गुरूजन–परिजन–
मगल आशिष देते थे,

सुषमा का साम्राज्य बिछा था–
अग–जग तक जो दिखते थे,
वृक्ष–लता–फल–फूल सुहाने–
नई कथा कुछ लिखते थे।

चौदह सर्ग

पार्श्व कुमार बढे भू पर ज्यो–
शुक्ल पक्ष का चॉद बढे,
शुष्क धरा पर सावन मे ज्यो–
हरियाली परिधान चढे,

तरूवर की फुनगी–फुनगी पर–
लतिका ज्यो मुस्काती है,
ज्यो निदाध के नभ मे शीतल–
घटा उमडकर आती है,

उदयाचल पर प्रभा–तमारी–
आकर जैसे मुस्काए,
अबुधि के चचल अचल पर–
किरण–किरण ज्यो लहराए,

पार्श्व कुमार बढे अवनी पर–
जीवन का सगीत लिए,
प्राणि–मात्र के लिए हृदय मे–
निर्मल अक्षय प्रीत लिए,

लोग सभी आनन्द–मग्न थे–
प्रीति अलौकिक छायी थी,
जीवन मे नव चेतनता थी–
जडता नही समायी थी,

सौम्य मूर्ति थे पार्श्व सभी के–
मन–मानस को हरते थे,
सब जीवो को सुख पहुँचाते–
मोद–मगन नित रहते थे,

✧ ✧ ✧ ✧
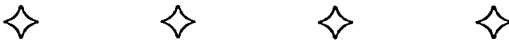
पास कुशस्थल भव्य नगर था–
इसके नृप भी ज्ञानी थे,
युवा पार्श्व के बडे प्रशसक–
सद्–गुण के अभिमानी थे,

इनकी कन्या प्रभावती तो–
परम सुन्दरी बाला थी,
लगती जैसे पारिजात के–
फूलो की ही माला थी,

इसके मन मे युवा पार्श्व के–
लिए लगन जग आयी थी,
शान्त हृदय मे भी तब लहरे–
नयी–नयी अकुलायी थी,

नृप प्रसेनजित ने भी सोचा–
हम सब मगल चाह करे,
प्रभावती का पार्श्व सग ही–
अब तो शुभ्र विवाह करे,

◇ ◇ ◇ ◇

इसी बीच घनघोर लडाई–
का स्वर गूँजा अम्बर मे,
नृप कलिग ने बोल दिया था–
धावा ऐसे अवसर मे,

नृप प्रसेनजित थे घबडाए–
कैसे सकट पार करे,
अनाहूत घनघोर लडाई–
का हम क्या उपचार करे,

नृप कलिग ने कहा कि हमको–
अपनी कन्या दान करो,
और नही तो क्षेत्र खुला है–
आओ, रण घमसान करो,

नृप प्रसेनजित विह्वल से थे—
कैसे कोई बात बने,
यह विनाश की काली रजनी—
कैसे शुभ्र प्रभात बने,

चुपके से तब एक दूत को—
काशी नगरी भिजवाया,
दूत पहुँच, कर अश्वसेन को—
हाल वहाँ का बतलाया,

अश्वसेन ने सुना तो उनको—
सहसा भीषण क्रोध जगा,
नृप कलिग के कुकृत्यो पर—
मन मे दृढ प्रतिशोध जगा,

युवा पार्श्व के पूरे तन मे—
बिजली जैसी कौध गयी,
लगी फडकने भुजा, हृदय मे—
शक्ति जगी थी नयी—नयी,

हाथ जोड कर कहा नृपति से—
मै ही रण मे जाऊँगा,
आप पिता—श्री शान्त रहे मै—
रिपु को सबक सिखाऊँगा,

अश्वसेन ने कहा—पार्श्व तुम—
कोमल चित्त, मृदु बालक हो,
नही युद्ध की उम्र तुम्हारी—
तुम तो छौने—शावक हो,

शीघ्र हमारे सेनापति ही–
युद्ध–भूमि मे जाएँगे,
महा घमण्डी नृप कलिग को–
यहाँ पकड कर लाएँगे,

पार्श्व कुमार अडे थे निश्चल–
अपनी बात मनाने को,
अन्तर्मन से मचल रहे थे–
युद्ध क्षेत्र मे जाने को,

बोले–राजन् न्याय जहाँ है–
जीत वहाँ निश्चय होगी,
सत्य–धर्म के साथ भुवन मे–
विजय सदा अक्षय होगी,

दुखियो की जो रक्षा करता–
उसकी राह न रूकती है,
आर्त्त जनो के लिए ध्वजा जो–
उठती, कभी न झुकती है,

जो अनीति का पोषक है–
जनता को सदा सताता है,
ऐसा भ्रष्टाचारी जन तो–
कभी नही जय पाता है,

शक्ति जहाँ है आगे आए–
दुखियो का उद्धार करे,
दुराचार जो करते वैसे–
पापी का सहार करे,

पक्ष हमारा अचल धर्म का–
साथ हमारे न्याय सदा,
नष्ट करेगे आगे बढकर–
दुष्टो का अन्याय सदा,

युवा पार्श्व की वाणी मे तो–
धधक रहे अगारे थे,
हृदय गगन मे न्याय–धर्म के–
जलते दिव्य सितारे थे,

अश्वसेन ने युवा पार्श्व की–
बातो को स्वीकार किया,
समर–क्षेत्र मे जाने को फिर–
सेना को तैयार किया,

✧ ✧ ✧ ✧

सत्य–न्याय के पोषक जन की–
ध्वजा सदा फहराती है,
ऐसे निश्छल प्राणी को ही–
यह धरती अपनाती है,

युवा पार्श्व की रण–यात्रा हम–
सबको आज सुनाएँगे,
हम सब उनके निर्मल पथ पर–
चल कर फूल बिछाएँगे।

पंद्रह सर्ग

विपुल वाहिनी शकरपुर से–
निकली जैसे सरगम सुर से,
  बढ़ी कि जैसे निर्झर झर कर–
  तीव्र वेग से उतरे भू पर,

घनी घटा मे दामिनि दमके–
किरण सूर्य की जैसे चमके,
निकली जैसे धारा सर से–
झूम–झूम कर सावन बरसे,

धूल धरा की उठी गगन मे–
रोष भरा था नयन–नयन मे,
नये–नये सब युवा जुटे थे–
सभी चतुर थे सभी घुटे थे,

हाथो मे तलवार तनी थी–
जलन क्रोध की बडी घनी थी,
हाथी के हौदो पर चढकर–
आगे सैनिक थे कुछ बढकर,

घोडो पर थे सधे सिपाही–
महा समर के सब थे राही,
पार्श्व कुमार बढे थे आगे–
किरण सूर्य की जैसे जागे,

सेना दौड रही थी अभ्रक–
पार्श्व सभी के थे सचालक,
क्षणभर बोले सब से रूक कर–
विनत भाव से चलना पथ पर,

जो भी रण से विलग कही हो–
उसको कोई कष्ट नही हो,
खुले मार्ग मे खेत मिलेगे–
पर्वत–घाटी–रेत मिलेगे,

नगर—गॉव भी कही मिलेगे—
सरसो—जौ के फूल खिलेगे,
धानो की बाली भी पथ पर—
तुम्हे मिलेगे गेहूँ—गाजर,

कृषको के खलिहान मिलेगे—
छप्पर—फूस—मकान मिलेगे,
हाट—बाट औ गली मिलेगी—
मुकुल—वकुल नव कली मिलेगी,

दूध—भरे थन गाय मिलेगी—
अबलाएँ असहाय मिलेगी,
बालक—वृद्ध—जवान मिलेगे—
कितने घर सुनसान मिलेगे,

किन्तु कही भी हाथ न देना—
आह किसी की तुम मत लेना,
जो निरीह है रण से बाहर—
उनका करना नही अनादर,

नही किसी को दुख पहुँचाना—
मत अपना अभिमान दिखाना,
चीटी को भी कष्ट न होवे—
कोई अपना मान न खोवे,

इसका ध्यान सदा ही रखना—
इसी नीति का पालन करना,
अन्यायी को सबक सिखाने—
को ही आता रण अनजाने,

इसकी है मर्यादा निर्मल—
करना इसका पालन प्रतिपल,
यही नीति है, धर्म यही है—
इस पर ही तो टिकी मही है,

जो अनीति का बनता सहचर,
कॉटे रहते उसके पथ पर,
अन्यायी के सिर पर चढकर—
सदा करेगे भीषण सगर,

यो ही पर परिताप न लेगे—
जनता को कुछ कष्ट न देगे,
सैनिक गण सब पार्श्व—वचन पर—
चले हृदय से प्रमुदित होकर,

जो भी पथ पर जन मिलते थे—
उनसे हिल—मिल कर रहते थे,
प्रजाजनो से होकर आदृत—
पथ पर आए वीर समादृत,

खुला सामने युद्ध पडा था—
यह समरागण बहुत बडा था,
नृप—कलिग की सेना सम्मुख—
युद्ध—पृष्ट का था यह आमुख,

इसे देख सब मचल उठे थे—
सैनिक मन मे दहक उठे थे,
सोचा नया प्रहार करेगे—
दुश्मन पर हम वार करेगे,

किन्तु पार्श्व ने रोका उनको–
धर्म भाव से टोका उनको,
कहा–रूको, हम समझाएँगे–
नृप–कलिग को बतलाएँगे,

युद्ध सभी कुछ का है नाशक–
बने न कोई कभी उपासक,
कहा पार्श्व ने–युद्ध टलेगा–
हम सबको ही श्रेय मिलेगा,

✧ ✧ ✧ ✧

प्रभु की लीला अद्भुत लगती–
नयी भावना मन मे जगती,
किससे कैसे कहलाती है ?
शक्ति कहाँ से आ जाती है ?

वही जानता, जिसमे पावन–
धर्म–भाव जगता है भावन,
खुले भुवन मे ज्ञान–किरण का–
नव प्रकाश मधु स्नेह–वरण का,

वे ही इसको अपनाते है–
निर्मल भाव जगा पाते है,
ऊर्ध्वमुखी है जिनकी ऑखे–
दिव्य–लोक तक उडती पॉखे,

अवनी अम्बर एक जहॉ है–
शुद्ध–ज्ञान ही खिला वहॉ है,
यही तत्त्व है भू का उत्थित–
धर्म यही है सदा अवस्थित,

✧ ✧ ✧ ✧

ज्ञानमयी नव ज्योति जगाएँ–
तन–मन अपना शुद्ध बनाएँ,
यही पंथ है नव उत्सव का-
जीवन मे सात्विक उद्भव का

सौलह सर्ग

नृप कलिग की अनी खडी थी–
पूरी सेना बहुत बडी थी,
आगे–आगे स्वय नृपति थे–
मूर्त्त क्रूरता के अधिपति थे,

दूत पार्श्व का आया सम्मुख–
बोला होकर उनके अभिमुख,
पार्श्व कुमार बडे है धार्मिक–
भेजा है सदेश सुनामिक,

महाराज यदि ग्रहण करेगे–
सबके ही प्रिय–पात्र बनेगे,
और नही तो रण मे इस क्षण–
नष्ट करेगे कीर्त्ति सुहावन,

ठीक इसी क्षण बीच समर मे–
पार्श्व पधारे वेश सुघड मे,
नृप कलिग से बोले–आएँ–
अपना निश्चय तुरत बताएँ,

समर–क्षेत्र यह बहुत बडा है–
उमय और दृढ सैन्य खडा है,
सब मे है उत्साह भयकर–
आए है सब शस्त्र सजाकर,

किन्तु सोचकर देखे इसके–
शुभ परिणाम बनेगे किसके ?
रण का अच्छा हाल न होता–
प्राण व्यर्थ ही जन–जन खोता,

नृप है न्याय पक्ष का रक्षक–
यही व्यवस्था है आवश्यक,
भू–पति न्याय–धर्म का प्रतिनिधि–
वह मर्यादित जैसे वारिधि,

सागर यदि निज सीमा छोडे–
बढकर सभी किनारे तोडे,
महा प्रलय तब हो जाएगा–
भू पर प्लावन ही आएगा,

उसी तरह जो पालन–कर्त्ता–
वही बनेगा जब सहर्ता,
क्या होगी फिर धर्म–महत्ता ?
कहॉ रहेगी जग की सत्ता,

आप चाहते प्रभावती को–
परम सुन्दरी ज्ञानवती को,
लेकिन यह वह नही मानती–
आप बने पति, नही चाहती,

ऐसे क्या सम्बन्ध रहेगा ?
जीवन पावन नही बनेगा,
बल से यदि जो हरण करेगे–
मृत्यु भनायक वरण करेगे,

बडा व्यक्तिगत है यह निर्णय–
इससे होगा भूतल का क्षय,
शक्ति प्रयोग यहॉ है अनुचित–
स्वार्थ भरा है इसमे समुचति,

इसीलिए यदि युद्ध ठनेगा–
राज्य समूचा क्षार बनेगा,
योद्धा विपुल अथाह भरेगे–
सब कुछ नर बलिदान करेगे,

त्राहि मचेगी भू पर अविरल–
सूना होगा माँ का अचल,
बच्चे विकल–अनाथ बनेगे–
सब के सिर पर काल रहेगे,

पक्ष आपका निर्बल ही है–
आज सृष्टि अन्याय यही है,
किन्तु हमारा पक्ष सबल है–
न्याय–नीति का इसमे बल है,

अशुभ विचार बदल दे भू–पति !
यही हमारी है शुभ सम्मति,
इसमे ही कल्याण निहित है–
जीवन का वरदान निहित है,

✧ ✧ ✧ ✧

नृप कलिंग ने शान्त भाव से–
सुना सभी कुछ बडे चाव से,
सहसा उसके मन मे जागा–
नया भाव करूणा का पागा,

मन मे दीपक जगा सलोना–
हुआ प्रकाशित कोना–कोना,
बोला–पार्श्व हुए आनदित–
आप सभी के ही है वदित,

बाते सुनकर धन्य हुआ हूँ–
मै भी भक्त अनन्य हुआ हूँ ,
कभी नही मै युद्ध करूँगा–
न्याय–धर्म से नही लडूँगा,

आज ज्ञान का दीप जला है–
मन का सोया देव जगा है,
भूतल पर सब कुछ है नश्वर–
मिट जाता है क्षण मे आकर,

किन्तु आपने ज्ञान दिया है–
मुझको तत्त्व महान दिया है,
मै कृतज्ञ हुआ अब जाता–
प्राणि मात्र का कुशल मनाता,

लेकिन यहॉ पुन आऊँगा–
हृदय पुण्य से भर जाऊँगा,
पाणि–ग्रहण जब आप करेगे–
प्रभावती को यहॉ वरेगे,

उस उत्सव मे साथ रहूँगा–
पुण्य विभव का सभी गहूँगा,
कहा पार्श्व ने–यह है पृच्छा–
पाणि–ग्रहण की मुझे न इच्छा,

मै निर्ग्रन्थ–पथ का याचक–
नही चाहिए मुझको बाधक,
नही किसी को कभी गहूँगा–
जैसा हूँ, बस वही रहूँगा,

◇ ◇ ◇ ◇

इसी तरह सब प्रमुदित–मन थे–
सब–के–सब उत्फुल्ल–मगन थे,
नृप प्रसेन भी खुश थे मन–से–
नए भाव के चित्रागण–से,

मन मे उत्सव–पार नही था–
दुखमय अब ससार नही था,
सुख से थे सब मगल गाते–
युवा पार्श्व का कुशल मनाते,

◇ ◇ ◇ ◇

आओ, हम सब भी अब गाएँ–
पुण्य–वर्त्तिका विमल सजाएँ,
नाश तिमिर का होगा इससे–
भूतल सिंचित होगा रस से।

सत्रह सर्ग

थे प्रसेनेजित बडे मगन मन–
रण की थी कुछ बात नही,
शान्ति अतुल छाई थी भू पर–
दुर्दिन की थी रात नही,

पार्श्वकुमार अतिथि थे उनके–
बडे मगन सब रहते थे,
जीवन मे नव उन्नति की ही–
बात हृदय से कहते थे,

एक दूसरे से आनदित–
रहते सब हर रोज वहॉ,
प्रीति परस्पर बढे इसी की–
करते थे सब खोज वहॉ,

आपस मे घुलमिल कर सब ने–
अपने मन की बात कही,
प्रेम अलौकिक रहे बनाए–
मेरी है सौगात यही,

इसी तरह दिन बीत रहे थे–
हर्ष अतुल लहराता था,
नयी चॉदनी भूतल पर थी–
नभ मे शशि मुस्काता था,

एक दिवस नृप बोले–मेरी–
कन्या ने है वचन दिया,
पार्श्व आपको प्रभावती ने–
मन से अपने वरण किया,

आप कुमार स्वय अब बोले–
किसका अब वह हाथ गहे,
आप नही स्वीकार करेगे–
तब वह किसके साथ रहे,

अन्य किसी का पाणि–ग्रहण वह–
नही कभी कर पाएगी,
आप न अंगीकार करेगे–
तब तो वह मर जाएगी,

इसीलिए है धर्म आपका–
उसका प्राण न जाने दे,
यही याचना, पार्श्व कि उसको–
अपने घर मे आने दे,

कहा पार्श्व ने– कैसे यह सब–
अपने मै स्वीकार करूँ ?
मै तो खुद निर्ग्रन्थ बनूँगा–
उसका क्या उद्धार करूँ ?

न्याय–धर्म की रक्षा को ही–
आया था विश्वास करे,
मान्य नही यह आज्ञा मुझको–
मत मेरा उपहास करे,

कुछ दिन मे फिर पार्श्व वहाँ से–
काशी नगरी आते है,
अपनी मातृ–भूमि मे आकर–
विजय ध्वजा फहराते है,

इनके स्वागत मे वह नगरी–
सजी सलोनी लगती थी,
सदा सहागिन की छवि जैसी–
सुषमा उसकी जगती थी,

फहरी घर–घर ध्वजा–पताका–
नर–नारी सब गाते थे,
पार्श्व कुमार विजय का सेहरा–
लेकर लौटे आते थे,

महाराज ने भाल चूम कर–
उनको पास बिठाया था,
राजमहीषी ने ऑगन मे–
उत्सव खूब मनाया था,

पडित और पुरोहित आए–
सबने आशीर्वाद दिए,
स्वय पार्श्व ने सभी जनो को–
जय के सब सवाद दिए,

✧ ✧ ✧ ✧

आओ हम सब भी अब उनके–
जय का मगल–गान करे,
जिनसे धन्य धरित्री उनके–
जीवन का सम्मान करे,

इससे निर्मल पुण्य मिलेगा–
मन–मानस धुल जाएँगे,
ज्योति–पुरूष के महा–भाव मे–
उनके ही हो जाएँगे ।

अठारह सर्ग

सुभग कुशस्थल की नगरी मे–
ज्योति जगी थी पुण्य घडी मे,
कुन्तु वहाँ की राज कुमारी–
आज बनी थी दुख की मारी,

प्रभावती के अन्तस्तल मे–
जलन जगी थी घोर अतल मे,
तडप रही थी विरहानल मे–
डूब गयी थी ऑसू जल मे,

अन्तर्मन मे पार्श्व बसे थे–
बीच हृदय के खूब कसे थे,
उन्हे किए थी आत्म–समर्पित–
तन–मन सब उनको ही अर्पित,

सुना, नही स्वीकार करेगे–
पार्श्व न अगीकार करेगे,
सहसा तडप उठी थी सुनकर–
मछली जैसे जल के बाहर,

बोली–अब मै विष खाऊॅगी–
सदा कुॅवारी रह जाऊॅगी,
विरह वेदना के घातो से–
विह्वल थी झझावातो से,

अति कृश और निराश बहुत थी–
मन–से हुई हताश बहुत थी,
सखी–सहेली सब समझाती–
उसको धीरज–धैर्य बॅधाती,

किन्तु पडी असहाय भूमि पर–
अश्रु बहाती रहती झर–झर,
दुखी हुए खुद नृप प्रसेनजित–
धैर्य बॅधाया उसे यथोचित,

लेकर उसको काशी आए–
अश्वसेन को दुख बताए,
महाराज की जय–जय कहकर–
बोले नृप दृग नीर बहाकर,

कहा कि राजन् मेरी कन्या–
प्रभावती है गुण से धन्या,
किन्तु हृदय वह हार चुकी है–
पारस को कर प्यार चुकी है,

किन्तु कमार नही कुछ सुनते–
उसकी कोई बात न गुनते,
यही दुख है मन मे भारी–
यही हमारी है लाचारी,

दया करे, उपचार बताएँ–
स्वय पार्श्व को कुछ समझाएँ,
अश्वसेन ने कहा कि राजन्–
आप स्वय है भद्र सुसज्जन,

प्रभावती भी नेम–व्रती है–
कुशल सुशीला ज्ञानवती है,
कैसे कोई ठुकराएगा ?
यह सम्बन्ध न रख पाएगा ?

किन्तु करे क्या पार्श्व न सुनता–
मुझ से कोई बात न करता,
चले उसे हम समझाएँगे–
बात आपकी मनवाएँगे,

◇ ◇ ◇ ◇

पार्श्व कुँअर के राज–कक्ष मे–
धर्म जगा ज्यो सुखद वक्ष मे,
घर मे रहकर भी मन बाहर–
एक लक्ष्य पर था उर–अन्तर,

ज्योति जगाए ध्यान लीन थे–
सभी गुणो मे वे प्रवीण थे,
मन मे कुछ भी राग नही था–
अपनो से अनुराग नही था,

इसी समय दोनो नृप आए–
आकर उनको सब समझाए,
कहा कि अद्भुत प्रकृति–नटी है–
विश्व मनोहर चित्र–पटी है,

जान रहे हम, तुम अभ्यासी–
महाभाव मे हो अविनाशी,
किन्तु धरा का नियम अलग है–
भिन्न यहाँ पर विहग–विहग है,

किसको तुम उपदिष्ट करोगे ?
तुम भी किसके इष्ट बनोगे ?
सब गृहस्थ हे, भुवन निवासी–
इन्हे न देगा कुछ सन्यासी,

जो गृहस्थ है, वही यहाँ पर–
देगा शुभ उपदेश दया कर,
उसको ही सब मान सकेगे–
उससे ही ले ज्ञान सकेगे,

और नही तो जग मे आकर–
लौटे कितने कथा सुनाकर,
उनका नही प्रभाव किसी पर–
कहते यो ही बात बना कर,

सोचो, यह सब शान्त हृदय से–
कहते है हम बहुत विनय से,
यह धरती तो प्रेम–भरी है–
सुभग–सुहावन हरी–भरी है,

तरह–तरह के विटप यहाँ है–
तत्त्व कही भी अलग कहाँ है ?
जो गृहस्थ, वह है अनुरागी–
किन्तु हृदय से है वैरागी,

इसीलिए कहते है, आओ–
पथ–गृहस्थ का ही अपनाओ,
इसमे ही गुण सब सचित है–
सब का सुख कल्याण निहित है,

◇ ◇ ◇ ◇

पार्श्व रहे चुप–मौन, न बोले,
अपना अन्तर तनिक न खोले,
मौन स्वीकृति ही इसे समझकर–
दोनो नृप ने लिए हृदय–भर,

आए मन से हर्ष मनाते–
भावी उत्सव–साज–सजाते,
राज नगर मे बजी बधाई–
घर–घर मे नव खुशियाँ छाई,

हृदय प्रेम से भरा–भरा है–
मोद–मगन यह वसुन्धरा है,
आओ हम भी शीश नवाएँ–
महाभाव मे हृदय रमाएँ।

उन्नीस सर्ग

पार्श्व कुँअर को लगन लगी थी–
छाया था उन्माद,
नगर–डगर आनन्द–मग्न था–
कहीं न था अवसाद,

अश्वसेन की राजाज्ञा से–
सज्जित था साम्राज्य,
कौन कहॉ क्या करे, किया था–
कार्यों का अविभाज्य,

अश्वो की थी छटा मनोहर–
हाथी के थे झुण्ड,
नाच रहे थे लगा मुखौटे–
तरह–तरह के मुण्ड,

बडा निराला दृश्य जगा था–
होती थी मनुहार,
ढोल–नगाडे–शहनाई का–
गूॅजा घोष अपार,

फहर रही थी केतु–पताका–
निर्मल था आकाश,
तरह–तरह की फुल झडियो का–
फैला नया प्रकाश,

घर–घर से बाहर आ–आकर–
लोग सुनाते गान,
झूम रहे थे गली–गली मे–
पहन नये परिधान,

घोडो की टप–टप टापो से–
गीत रहा था फूट,
हाथी की मद–रन्ध्र–सुवासित–
आज रही थी छूट,

भू का कण–कण हुआ प्रफुल्लित–
आज रहा था नाच ,
हिरण–चरण–धर पशु–पक्षी सब–
भरते रहे कुलॉच,

सागर की लहरो का ज्यो हो–
पूनम मे उत्थान,
त्यो ही मगल क्षण मे सब का–
हुआ विमल प्रस्थान,

उषा किरण के साथ विहग का–
फूटे कलरव छन्द,
जैसे ही सब चले मनाते–
पग–पग पर आनन्द,

शकरपुर से पार्श्व कुँअर की–
निकली थी बारात,
अपनी कला दिखाते–गाते–
लोग–बाग निष्णात,

सभी ओर थी धूम गगन तक–
छाया था अम्बार,
छूट रही थी हँसी–खुशी की–
मादक नयी फुहार,

पहुँच कुशस्थल की नगरी मे–
सबने किया पडाव,
लोग मगन थे देख वहाँ के–
लोगो के अनुभाव,

चप्पा–चप्पा चमक रहा था–
हीरे–मोती–रत्न,
सब जन हो आकर्षित, सब थे–
करते यही प्रयत्न,

जन–जन तक सब बाराती का–
स्वागत हुआ अभीष्ट,
सबको वह सम्मान मिला जो–
सब को था उदीष्ट,

सजग सभी बाराती–जन थे–
रहे सभी सतुष्ट,
रहे सभी बारात मगन–मन–
कोई रहे न रूष्ट,

शुक्ल लग्न मे हुआ पार्श्व का–
शुभ विवाह सम्पन्न,
लहर खुशी की छाई भू पर–
जन–जन हुए प्रसन्न,

विप्र–महाजन–याचक– जन को–
मिला अपरिमित दान,
अश्वसेन को नृप प्रसेन ने–
सब कुछ किया प्रदान,

इतना मिला दहेज कि उसका–
करना कठिन बखान,
एक–एक जन बाराती के–
करते थे गुण–गान,

अद्भुत था आतिथ्य कि कोई—
हुए न तिलभर रूष्ट,
सभी तरह से पुरजन—परिजन—
मन से थे परिपुष्ट,

कुछ दिन बाद वहॉ से लौटे—
सुख से सारे लोग,
मन से सब सतुष्ट—पुष्ट थे—
पाकर शुभ सयोग,

◇ ◇ ◇ ◇

प्रभावती भी दिव्य—मना—सी—
हुई परम परितृप्त,
प्रेम—भाव से हृदय खिला था—
पति मे रहती लिप्त,

किन्तु हृदय मे भौतिकता का—
योग नही था लेश,
राजमहल मे भी रखती थी—
तापस का पिरवेश,

दिव्य—भाव से दोनो के थे—
मन—मानस परिव्याप्त,
दोनो के थे भाव अलौकिक—
दोनो ही थे आप्त,

पति—पत्नी मिल एक—दूसरे—
का करते परितोष,
नगर निवासी तक पाते थे—
इनसे ही सतोष,

◇ ◇

प्रभावती थी परम सुशीला–
ज्ञानमयी शुभ मुर्त्ति,
पार्श्व कुँअर भी जन–मानस मे–
भरते थे नव स्फूर्त्ति,

आओ, हम सब दोनो के ही–
गाएँ मगल गीत,
होगी इससे सब की वाणी,
पावन परम पुनीत।

बीस सर्ग

काशी नगरी परम रम्य थी–
और मनोरम गगा,
नर–नारी थे मन से भावुक–
तन से हरदम चगा,

सदा रहता था तट पर–
साधु–पुरूष का मेला,
कभी न दिखता था नगरी मे–
कोई रूग्ण–अकेला,

गगा की हर लहर–लहर पर–
प्राण निछावर होते,
मुक्ता–दल–से छहर–छहर जल–
नर के कल्मष धोते,

विटपो पर औ जल–तरग पर–
करते थे खग कलरव,
दिशा–दिशा मे होते रहते–
नव जीवन के उत्सव,

देवो के भी महादेव का–
हर क्षण बास यहाँ है,
सात्विकता के लिए हृदय मे–
दृढ विश्वास यहाँ है,

इसी नगर के हृदय–क्षेत्र मे–
अश्वसेन थे रहते,
उनके सात्विक जीवन की तो–
सब जन गाथा कहते,

पार्श्व कुँअर भी बडे सहज थे–
सब को हृदय लगाते,
करूणा के सागर थे, मन से–
सब का कष्ट मिटाते,

जो भी आते, सब जन उन से–
समुचित आदर पाते,
मन–वाछित फल सब जन पाकर–
खुशी मनाते जाते,

ज्ञानी–ध्यानी–सिद्ध–तपस्वी–
के नित जमघट रहते,
पार्श्व कुँअर आतिथ्य सभी का–
खुले हृदय से करते,

यदा–कदा पाखण्डी आकर–
अपना रोब जमाते,
उनको भी वे आदर पूर्वक–
सच्ची राह बताते,

✧ ✧ ✧ ✧

एक दिवस ऐसा ही कोई–
एक तपस्वी आया,
उसे देखने को पुर–वासी–
मे था जोश समाया,

बडी भीड थी लोग उधर चुप–
चाप चले जाते थे,
सब मे कुछ कौतूहल था, पर–
बता नही पाते थे,

पार्श्व कुँअर ने देखा सब कुछ–
आकर अपनी छत पर,
एक तरफ ही जाते थे सब–
चुम्बक से ज्यो खिँचकर,

प्रहरी ने बतलाया आकर–
एक सिद्ध है आए,
कमठ नाम बतलाते अपना–
रहते धुनी रमाए,

दूर–दूर तक सुना कि उनकी–
बहुत धूम है जागी,
अपने को बतलाते है वे–
सिद्ध–तपस्वी त्यागी,

नर–नारी हर क्षण जा–जाकर–
दान अतुल है देते,
तपोव्रती इस वैरागी से–
सब जन आशिष लेते,

कहा पार्श्व ने सच्चा–तापस–
शोर नही यो करता,
जनारण्य से दूर कही पर–
दिव्य भाव मे रहता,

चलो, चले हम भी तो देखे–
कैसा है सन्यासी,
उससे कैसे हुए विमोहित–
मेरे नगर–निवासी,

पार्श्व कुँअर ने आकर देखा–
यह है भ्रष्टाचारी,
यज्ञ–वेदिका लहक रही है–
किन्तु धुऑ है भारी,

लोगों ने तब काष्ठ उठाकर—
उसको चीरा पल में.
निकल पड़े दोनों झुलसे—
नागिन नाग अनल से;

पार्श्व कुँअर ने हाथ फेर कर
उनको स्पर्श किया था
नाग और नागिन ने तब भी
ऊँचा पाया किया था

पाठ किया था नमस्कार का—
मंत्र अचूक सुहाना.
हुआ वहाँ का क्षण में सहसा—
अद्भुत बानिक—बाना.

नाग हुए धरणेन्द्र इन्द्र ले–
शक्ति परम कल्याणी,
नागिन पद्मावती नाम की–
बनी सुभग इन्द्राणी,

✧ ✧ ✧ ✧

कमठ क्रुद्ध हो भागा क्षण मे–
उसे क्षोभ गहरा था,
कैसे ले प्रतिशोध कुँअर से–
मन मे क्रोध भरा था,

पार्श्व वही थे, कहा न कुछ भी–
उनका शान्त हृदय था,
दुष्ट कमठ के हित भी उनमे–
शुद्ध भाव अक्षय था,

✧ ✧ ✧ ✧

परम सत का हाल यही वे–
सब का हित कर जाते,
अपने शठ–प्रतिरोधी को भी–
हँसकर गले लगाते,

आओ, हम सब बडे प्रेम से–
उनकी महिमा गाएँ,
मार्ग यही है आत्म विजय का–
हम सब चरण बढाएँ,

होगा इससे ही समाज का–
भाग्य भुवन मे उन्नत,
जन–जन का मन विमल बनेगा,
सदा रहेगा अक्षत।

इक्कीस सर्ग

पार्श्व बने थे निखिल भुवन मे—
सभी तरह निर्लिप्त,
चमक रहा था उनका आनन—
महा भाव से दीप्त,

नाग हुए धरणेन्द्र इन्द्र ले–
शक्ति परम कल्याणी,
नागिन पद्मावती नाम की–
बनी सुभग इन्द्राणी,

✧ ✧ ✧ ✧

कमठ कुद्ध हो भागा क्षण मे–
उसे क्षोभ गहरा था,
कैसे ले प्रतिशोध कुँअर से–
मन मे क्रोध भरा था,

पार्श्व वही थे, कहा न कुछ भी–
उनका शान्त हृदय था,
दुष्ट कमठ के हित भी उनमे–
शुद्ध भाव अक्षय था,

✧ ✧ ✧ ✧

परम सत का हाल यही वे–
सब का हित कर जाते,
अपने शठ–प्रतिरोधी को भी–
हँसकर गले लगाते,

आओ, हम सब बडे प्रेम से–
उनकी महिमा गाएँ,
मार्ग यही है आत्म विजय का–
हम सब चरण बढाएँ,

होगा इससे ही समाज का–
भाग्य भुवन मे उन्नत,
जन–जन का मन विमल बनेगा,
सदा रहेगा अक्षत।

इक्कीस सर्ग

पार्श्व बने थे निखिल भुवन मे–
सभी तरह निर्लिप्त,
चमक रहा था उनका आनन–
महा भाव से दीप्त,

राजमहल मे रहते थे पर–
मन मे था वैराग,
प्राणि–मात्र से जाग गया था–
मन मे दृढ अनुराग,

यही सोचते रहते हो वे–
नही किसी को कष्ट,
प्रभु की सब है सृष्टि निराली–
करे न कोई नष्ट,

मधु–ऋतु का था राग भुवन मे–
खिले हुए थे फूल,
प्रकृति–नटी के रग–बिरगे–
उडते भव्य दुकूल,

वन–उपवन मे थिरक रहा था–
मधुपो का गुजार,
बडी सलोनी लगतीी थी इस–
जग की नयी बहार,

राजमहल मे भी आकर्षक–
बजते मृदुल–मृदग,
तरह–तरह के आमोदो की–
उठती नयी तरग,

सुलभ सदा थे विषय–भोग के–
सारे नव सामान,
गूँज रहे थे सदा सुहाने–
नव जीवन के गान,

फल से लदे विटप थे मादक–
वृन्त रहे थे झूम,
कोयल की धुन मचा रही थी–
काम–विभव की धूम,

दूर–दूर तक मादकता का–
छाया था अनुराग,
मदन–अन्ध–व्याकुल था भूतल
जाग रहा था फाग,

झूम रही थी ललित लताएँ–
बनकर तरू–गलहार,
कोक विशोक हुआ, कोकी से–
जता रहा था प्यार,

इस उन्मादक क्षण मे भी थे–
कुँअर हृदय से शान्त,
किसी तरह के काम–राग से–
हुआ न मन उद्भ्रान्त,

जन्म–जन्म के उनके शुभफल–
मूर्त्त हुए चुपचाप,
पुज्जिभूत वैराग्य हृदय मे–
जागा अपने आप,

उसी समय अनुप्रेक्षाएँ भी–
जागी द्वादश बार,
किया पार्श्व ने उनका चिन्तन–
मन मे बारम्बर,

देखा यह अब अग अनित्य है–
सब का होता अन्त,
अशरण–शरण–भाव से करते–
सब की रक्षा सन्त,

जागा फिर एकत्व भाव का–
मन मे नव उद्‌गार,
जन्म अकेला लेकर नर खुद–
करता भव को पार,

और पुन अन्तर मे आया–
पूरा भव ससार,
शत्रु–मित्र औ रोग–दु ख का–
है यह पारावार,

दृढ अन्यत्व भावना जागी–
जागा नया विभाव,
आत्मा है यह भिन्न वपुस से–
जागे उज्ज्वल भाव,

फिर अशुचित्व भावना आई–
जागा सवर भाव,
तन–मन शुद्ध रहे औ जागे–
परम योग अनुभाव,

जगी निर्जरा लोक भावना–
दुर्लभ बोधि अपार,
जिससे जन्म–मरण के कारण–
का होता सहार,

जगा धर्म का भाव हृदय मे–
शुद्ध विमल साकार,
सॅवर भावना से मन पाता–
उर्ध्वमुखी सत्कार

सभी विमल अनुप्रेक्षाओ का–
स्पष्ट हुआ जब रूप,
दीक्षा धारण करने का तब–
जागा भाव अनूप,

पास पिता के आकर बोले–
आज्ञा दे महराज,
दीक्षा धारण करने को ही–
जाऊँगा मै आज,

अश्वसेन ने काह–नही यह–
जल्दी का है काम,
सोचो, इससे हम सब का फिर–
होगा क्या परिणाम ?

नही तुम्हारे बिना रहेंगे–
हम सब जीवित प्राण,
वत्स, हमारे जीवन मे मत–
आने दो व्यवधान,

कहा पार्श्व ने–मोह यहॉ है–
यही रहा है रोक,
इसी मोह के कारण जग मे–
आज व्याप्त है शोक,

गेरी आत्मा तड़प रही है–
देखे दृग मे दाह;
कर्ण–कुहर मे गूँज रही है–
दुखित जनो की आह,

कुछ दिन और रूकूँ तो क्या यह–
थम जाएगा मोह ?
मोह निरन्तर करता रहता–
सत्य–शिखा से द्रोह,

इसीलिए यह मोह त्याग कर–
आज्ञा दे श्रीमान्
दीक्षा धारण करने को मै–
तुरत करूँ प्रस्थान,

महाराज ने देख इसका–
दृढता है सकल्प,
धर्म–मार्ग से पार्श्व कुँवर को–
डिगा न सकते स्वल्प,

सहज भाव से आज्ञा दे दी–
जाओ पार्श्व कुमार !
करता विश्व रहेगा अविरल–
तेरी जय–जयकार,

✧ ✧ ✧ ✧

चलो बिछाएँ इनके पथ पर–
गीतो के कुछ फूल,
इससे निहित रहेगा मन मे–
सदा धर्म अनुकूल !

बाईस सर्ग

पूज्य पिता की आज्ञा पाकर—
पार्श्व हुए थे हर्षित जी भर,
मन मे नव आनन्द समाया—
हृदय प्रेम से था भर आया,

बहुत दिनो से चाह जगी थी–
दिव्य भाव की लाग लगी थी,
राज भवन मे हँसने आए–
अन्धे ने ज्यो लोचन पाए,

सब को समुचित मान दिया था–
याचक–गण को दान दिया था,
जिसने भी जो मॉगा उनसे–
दिया तुरत ही सब कुछ मन से,

वासव के अनुशासन सुन के–
भरे निधिप ने कोषक उनके,
प्रतिदिन स्वर्ण अपार लूटाते–
लेने वाले पार न पाते,

अद्भुत वर्षी–दान किया था–
वैभव अतुल–अथाह दिया था,
देने मे कुछ भेद नही था–
देकर भी कुछ खेद नही था,

एक वर्ष तक चला यही क्रम–
सयम–व्रत का था यह उपक्रम,
व्रत–पालन की थी तैयारी–
आगे के व्रत भी थे भारी,

जीवन को निरूपाधि बनाकर–
खडे पार्श्व थे तट पर आकर,
पूर्ण सादगीमयी व्यवस्था–
बनी पार्श्व की विमल अवस्था,

✧ ✧ ✧ ✧

एक वर्ष था बीता सुख–से–
धर्म–भाव के दिव्यामुख–से,
हृदय प्रेम से भरा हुआ था–
कुछ भी भौतिक नही छुआ था,

अश्वसेन ने दीक्षोत्सव का–
साज सजाया सत् उद्भव का,
सजी नयी सुन्दर–सी शिविका–
आसन एक लगा नव दिव का,

रत्न–जटित था छत्र मनोहर–
नभ मे जैसे खिले दिवाकर,
दोनो और चॅवर थे डुलते–
मागध–बन्दी जय जय करते,

मगल–वादक वाद्य–घोष था–
सब मे उमगा धर्म–जोश था,
नर–नारी थे मगल गाते–
ढोलक–झाझ–मृदग बजाते,

शिविका मे थे पार्श्व विराजे–
धर्म–ज्ञान की विभुता साजे,
अश्वसेन हाथी पर चढकर–
राजचिन्ह औ ध्वजा लगाकर,

चले मार्ग मे आगे–आगे–
शान्त–भाव के रस मे पागे,
नर–नारी उत्कठित मन–से–
मिलते थे सब जन परिजन से,

छत से वधुएँ और युवतियाँ–
आँख बिछाए व्याकुल परियाँ,
देख रही थी पार्श्व–कुँअर को–
मुग्ध–चकोरी ज्यो शशधर को,

बच्चे–बूढे अन्य युवक–जन–
आए पथ पर करते वन्दन,
गूँज रहा था जय–जय का स्वर–
हुआ निनादित अवनी–अम्बर,

भव्य नगर से बाहर आए–
उपवन मे जा ध्यान लगाए,
वही अशोक विटप के नीचे–
बैठे सब जन आँखे मीचे,

पार्श्व कुँअर ने यही पहुँच कर–
हटा दिए सब भूषण–अम्बर,
इसे देखकर युग्ध पुरदर–
दिए वस्त्र शुभ देवदूष्य–वर,

यही कुँअर दृढ हृदय–तुष्टि से–
लोच किया था पच मुष्टि से,
स्वय इन्द्र ने केश उठाकर–
क्षीर सिन्धु मे डाले जाकर,

अगीकार हुई जब दीक्षा–
पूर्ण हुई जब पार्थिव शिक्षा,
था नक्षत्र विशाखा पुन्यम–
पार्श्व हुए अब भू पर धन्यम्,

✧ ✧ ✧ ✧

कठिन मार्ग जो ग्रहण किया था—
पार्श्व कुँअर ने वरण किया था,
उसे देख कर सब नर—नारी—
अश्रु बहाए मन से भारी,

पार्श्वनाथ अब थे विश्वम्भर—
धरा धन्य थी उनको पाकर,
प्रात काल वहाँ से आगे—
किया विहार कि अग—जग जागे,

आओ, हम सब अपने मन—से—
उनके हो ले कर्म—वचन से,
यही मार्ग है जिस पर चल कर—
हमे मिलेगा जीवन का वर।

तेईस सर्ग

पार्श्वनाथ अब–
नाथ धरा के,
केन्द्र बने थे–
ज्ञान परा के,

करते रहे–
विहार अलौकिक,
देते सब को–
मत थे सात्विक,

जहाँ कही भी–
ये जाते थे,
बढकर सब जन–
अपनाते थे,

कितने राज–
कुमार पधारे,
इनके पग पर–
तन–मन वारे,

दीक्षा–लेकर–
कितने ही जन,
बने धरा पर–
खुद भी पावन,

इनको सारा–
ज्ञान मिला था,
सभी तरह से–
ह्रदय खिला था,

कुछ भी यहाँ–
विशेष नही था,
इनका ज्ञान–
अशेष कही था,

केवल ज्ञान–
मिला फिर अक्षय,
पच ज्ञान का–
पाया आश्रय,

मति–श्रुति ज्ञान–
मिला था क्षण मे,
अवधि ज्ञान भी–
था शुचि मन मे,

ऐसा कोई–
तत्त्व नही था,
जिस पर इनका–
स्वत्त्व नही था,

परम ज्ञान के–
मूर्त्त रूप थे,
दिव्य भाव के–
नव स्वरूप थे,

भव मे भव के–
उद्धारक थे,
आत्म–शुद्धि के–
परिचालक थे,

थे सर्वज्ञ–
विभा के दाता,
दुख से पीडित–
जन के त्राता,

इनका कोई–
तोल नही था,
उपदेशो का–
मोल नही था,

जन्म–मरण का–
दुख है भू पर,
कष्ट न कोई–
इसके ऊपर,

कैसे इसे–
मिटाएँगे हम,
जीवन का फल–
पाएँगे हम,

इसी ज्ञान की–
जोत जगाकर,
तिमिर हटाते–
थे विश्वम्भर,

इनका था–
विश्वास अखण्डित,
रहे न भू पर–
कोई पीडित,

जहाँ कही भी–
किसी नयन मे,
दिखता जब दुख–
कोई मन मे,

तुरत वहाँ–
अपने ही जाकर,
सुख पहुँचाते–
हृदय लगाकर,

रहे न कोई–
जग मे भूखा,
ज्ञान–हीन तन–
सूखा–सूखा,

सब मे निर्मल–
ज्योति जगी हो,
प्रभु की लौ से–
लगन लगी हो,

यही चाह थी–
उनकी अविरल,
प्रेमिल मन हो–
पूरा भूतल,

मनुज जन्म जब–
धारण करता,
दु ख अपरिमित–
मन पर सहता,

बाल–युवा फिर–
होता जग मे,
दुख ही पाता–
है भव–मग मे,

और पुन जब–
जरठ सताता,
दुख–ही–दुख वह–
हर क्षण पाता,

शक्ति न कुछ भी–
रहती तन मे,
पछताता रहता–
है मन मे,

काल यथावत–
बीत रहा है,
जीवन का घट–
रीत रहा है,

सब कहते है–
दुख–ही–दुख है–
मृग–तृष्णा है–
जो भी सुख है,

जीवन कितना–
क्षण–भगुर है,
धन–विषाद ही–
यहॉ प्रचुर है,

ऐसे मे ही–
मनुज फॅसा है,
काल–रज्जु मे–
जीव कसा है,

पार्श्वनाथ के–
मन मे निर्मल,
यही भाव–
जगता था प्रतिपल,

जन्म–मरण के–
भय के ऊपर,
कैसे नर रह–
पाए भू पर,

वे विहार कर–
जब जाते थे,
विपुल अमरता–
बरसाते थे,

उनके पथ पर–
आगे–आगे,
आते थे सब–
विभुता त्यागे,

कितने नृप के–
मुकुट चरण पर,
लुठित रहते–
होकर तत्पर,

राजा–रानी–
राजकुँअर नत,
रहते इनके–
पग पर अविरत,

✧ ✧ ✧ ✧

पार्श्वनाथ की–
धर्म–देशना,
अद्‌भुत थी वह–
ज्ञान–वेशना,

सबको थे वे–
यही बताते,
जीव भोग मे–
क्यो पड जाते ?

देख रहे जो–
विश्व–पटल पर,
सब अनित्य है–
केवल पल भर,

सब कुछ ही जब–
मिट जाता है,
जीव यहाँ क्यो–
भरमाता है ?

पुत्र–मित्र औ–
अपने सब जन,
कब रहते है–
यहाँ चिरतन ?

दो दिन की ही–
चहल–पहल है,
मिटता रहता–
सब प्रतिपल है,

पूर्व जन्म का–
शत्रु बदलता,
वर्त्तमान का–
सहचर बनता,

इसी तरह जो–
भी दिखता है,
एक नही सब–
दिन रहता है,

इसके हित फिर–
मोह कहॉ का ?
किसी जीव से–
द्रोह कहॉ का ?

तन का ही सम्बन्ध–
हृदय मे,
भरता है उन्मेष–
निलय मे,

मोह इसी से–
जगते रहते,
इसी दाह मे–
सब जन दहते–

अशरण शरण–
प्राप्त होने पर,
दिव्य–भाव मे–
मन खोने पर,

परम भाव मे–
सब मिल जाते,
राह मुक्ति की–
है नर पाते,
और नही तो–
मनुज भटकता,
रहता पग–पग–
स्वय अटकता,

मनुज अकेला–
आया जग मे,
स्वय रहेगा–
भाव सजग मे,
कोई इसमे–
साथ न देगा,
उसका भार –
उतार न लेगा,

सुख–दुख था–
सयोग–विलग मे,
साथ न देगा–
कोई जग मे,
यह ससार–
भँवर है दुख का,
व्यर्थ खोजना–
सम्बल सुख का,

जन्म–जन्म तक–
जीव यहाँ पर,
भटक–रहा है–
तडप–तडप कर,

खोज रहा है–
सुख इसमे ही,
भरा हुआ है–
दुख जिसमे ही,

आत्मा औ यह–
वपुष अलग है,
एक धरा पर–
सदा सजग है,

और दूसरा–
जड का भागी,
क्षण–भगुरता–
का अनुरागी,

दोनो मे हो–
मेल न सकता,
किन्तु मूढ नर–
एक समझता,

और विलग हो–
कर आत्मा से,
सदा भटकता–
मृग–आशा से,

मल–मूत्रो से–
त्वचा ध्वस्त है;
पीडित है औ–
रोग ग्रस्त है,

रोम–रोम मे–
व्यथा भरी है,
मर्म–वेदना–
भी गहरी है,

किन्तु जिन्होने–
इसे जगाया,
आत्मा का–
उद्धार बताया,

वे ही जन है–
धन्य भुवन मे,
रहते वे ही–
दिव्य भवन मे,

किन्तु काय औ–
मन–वाणी से,
जुडे शक्ति की–
कल्याणी से,

उनका योग–
प्रबुद्ध रहा है,
जीवन वह ही–
शुद्ध रहा है,

वे ही बनते–
है निष्कर्मा,
योग–युक्त है–
सात्विक धर्मा,
इसीलिए–
तत्पर रहना है,
खुद ही भव–
सागर तरना है,

जैसे बॉध–
बॅधे सरिता मे,
छन्द–बन्द–लय–
हो कविता मे,
ताकि अनिच्छित–
वस्तु न आए,
आकर नष्ट न–
गति कर जाए,

वैसे ही हम–
बॉधे जीवन,
आत्म–बोध मे–
रहे चिरन्तन,
जन्म–मरण के–
सब कारण को,
नष्ट करे हम–
सचारण को,

कर्म झडे–
निर्जरा रहे हम,
जागे भव मे–
उन्नति का क्रम,

जीव–अजीव–
बसे जो जग मे,
मिलते जो भी–
इस भव–मग मे,

एक तन्तु से–
जुडे सभी है,
भेद किसी मे–
कभी नही है,

यही हृदय मे–
ध्यान लगाएँ,
दिव्य–लोक–
सम्बन्ध जगाएँ,

शास्त्र श्रवण औ–
श्रद्धा–बल से,
जगते सब नर–
सयम–कल से,

यही मनुजता–
का है सम्बल,
शान्त इसी से–
होती हलचल,

हृदय—कमल—
इससे ही खिलता,
परा तत्त्व से—
मानव मिलता,

सयम और—
अहिसा—तप से,
दहता कभी न—
नर आतप से,

शुद्ध शान्ति मे—
वह रहता है,
आप्त वचन ही—
नित कहता है,

पार्श्वनाथ ने—
कहा कि सब जन,
करे मोक्ष—पथ—
का आराधन,

इसी तरह—
भगवान निरतर,
देते थे—
उपदेश धरा पर,

जन—जन तक—
आह्लादित होकर,
मन का सारा—
कल्मष धोकर,

अपना जीवन–
धन्य बनाते,
महा मोक्ष का–
मार्ग सजाते,

✧ ✧ ✧ ✧

आओ, हम सब–
भी अविनाशी,
भगवन् के ही–
हो प्रत्याशी,

उनके पथ पर–
चले निरन्तर,
पार करे दुखमय–
भव–सागर ।

चौबिस सर्ग

पार्श्वनाथ की ज्योति धरा पर–
अविरल फैल रही थी,
मानो सुरसरि की इस भू पर–
नूतन धार बही थी,

उनके उपदेशामृत सुनकर—
पुण्य—भाव थे जगते,
कष्ट—रोग से पीडित जन भी—
मोक्ष—मार्ग मे लगते,

जहॉ कही भी वे जाते थे—
धर्म—केतु फहराते,
अनाचार—अन्याय—पाप सब—
अपने ही मिट जाते,

फैली थी जो भ्रान्ति भुवन मे—
उसको दूर भगाया,
हिसा थी जो निहित यज्ञ मे—
उसका रूप दिखाया,

जो अज्ञान—तपस्या से ही—
कृत्य—कृत्य हो जाते,
अपने वचनामृत से उनको—
सच्ची राह दिखाते,

भ्रष्ट तपस्वी—सन्तो का ही—
अड्डा यहॉ बना था,
यज्ञ—पिण्ड मे बलि के नाते—
कितना रक्त सना था,

इनको सच्ची राह बताकर—
सब उद्धार किया था,
डूब रहे मझधार—पडो का—
बेडा पार किया था,

ढोगी औं पाखण्डी जन सब—
करते थे मनचाही,
धर्म—कर्म की निम्न भावना—
के ही थे उत्साही,

ऐसा था अज्ञान कि हिसा—
करते नही झिझकते,
अपने सम्मुख नही झिझकते,
ज्ञानी कभी समझते,

तम का ही था जोर चतुर्दिक—
भटक रहे थे प्राणी,
अपनी बातो को ही केवल—
कहते थे लासानी,

नर मे नरता कही नही थी—
जडता ही थी भारी,
महानरक—जाने की ही—
लगती थी तैयारी,

नर मे जहॉ अधर्म, वहॉ पर—
कैसे बचती अबला,
नष्ट हुए आचार सभी के—
भ्रष्ट हुई थी सकला,

तरह—तरह के पापाचारी—
कर्म रही अपनाती,
तरह—तरह की हिसा मे थी—
अपना हृदय रमाती,

जो कुलीन थी, वे भी सब कुछ–
अपना भूल गयी थी,
उनके मन में भी पापो की–
बाते नयी–नयी थी,

अपने पति के प्रति सधवा मे–
रहा नही आकर्षण,
क्षण–भर की ही भोग–तृप्ति मे–
लगा बीतने जीवन,

पति के मरने पर महिलाएँ–
अपना प्राण गँवाती,
और बहुत–सी जबरन ऐसी–
सती बनायी जाती,

कहते सब–है सती वही जो–
पति के सँग जल जाती,
पति मरने के बाद किसी को–
मुखडा नही दिखाती,

पार्श्वनाथ ने इन महिलाओ–
को भी मार्ग दिखाया,
धर्म–न्याय का विश्लेषण कर–
सारा तत्व बताया,

कहा कि अपने मन मे हरदम–
शुद्ध भाव अपनाओ,
जैन–धर्म के सयम–व्रत के–
बाहर पाँव न लाओ,

पार्श्वनाथ के उपदेशो से–
रूकी प्रथा यह काली,
नारी के उस जड समाज मे–
फैली नव उजियाली,

जैन धर्म मे दीक्षित होने–
महिलाएँ भी आई,
धर्म–भाव की ज्योति हृदय मे–
सब ने नयी जलाई,

हुआ नया सद्धर्म प्रचारित–
खुला ज्ञान का बन्धन,
सभी लोग जिन धर्म–शरण का–
करते थे अभिनन्दन,

◇ ◇ ◇ ◇

पार्श्वनाथ ने पुष्प चला–सी–
वहॉ हजारो नारी–
को था दीक्षित किया पथ मे–
सयम के व्रत–धारी,

आर्यदत्त गणधारी जैसे–
वहॉ हुए थे दीक्षित,
कई हजार पुरूष भी पथ पर–
हुए तुरत परिलक्षित,

कई हजार गृहस्थ बने थे–
इनके ही पथ–चारी,
देश विरति सयम–व्रत पाकर–
हुए सभी अविकारी,

जो भी आए सब को प्रभु ने–
सात्विक धर्म बताया,
मन–मानस के घिरे तिमिर मे
जगमग दीप जलाया,

प्रभु का था निर्देश, वस्त्र सब–
दीक्षित जन भी पहरे,
समय–काल को परखे प्रतिक्षण–
जड–भव मे मत ठहरे,

वस्त्र रहे बहुमूल्य कि हल्के–
इस पर ध्यान न धरना,
आत्म–भाव मे शुद्ध हृदय से–
ग्रहण उन्हे था करना,

राग–द्वेष से ऊपर उठकर–
सब जन सुख से रहते,
धर्म–न्याय की बात परस्पर–
आपस मे सब करते,

जहॉ कही भी तिमिर–कलुष का–
चिन्ह दिखाई पडता,
राग–द्वेष औ मोह–द्रोह का–
शब्द सुनाई पडता,

जहॉ कही पाखण्ड धर्म का–
नाम कलकित करता,
जहॉ कही भी किसी तरह का–
भय आतकित करता,

जहॉ कही भी रोग–मोह से–
पीडित दिखता मानव,
जहॉ कही भी बना मनुज है–
हिस्र–कुकर्मी–दानव,

जहॉ कही अन्याय अहर्निश–
रहता शीश उठाए,
घृणा–जुगुप्सा–दम्भ जहॉ हो–
मन मे सौध बनाए,

दुख के कारण जहॉ कही भी–
भीषण आह भरी हो,
दारूण–कष्ट–व्यथा की छाया–
जहॉ कही उभरी हो,

साधु–पुरूष हो जहॉ प्रताडित–
नाचे पापाचारी,
जहॉ–कही भी मोद मनावे–
भू पर भ्रष्टाचारी,

वहॉ–वहॉ पर पार्श्वनाथ का–
गूॅज उठा वचनामृत,
मिटा अनय–अन्याय भुवन से–
धर्म हुआ फिर आहत,

तिमिर–कलुष मिट गया वहॉ पर–
छायी नव उजियाली,
मोह–द्रोह की रजनी भागी–
जगी ऊषा की लाली,

रहा नही पाखण्ड धरा पर–
सहज साधुता जागी,
बने सभी सद्–गृहस्थ हृदय से–
दिव्य–भाव अनुरागी,

कष्ट–व्यथा की रही न छाया–
भागे पापाचारी,
हुए स्वय सब मनुज धरा के–
सभी तरह अविकारी,

न्याय–नीति का पुण्य धरा पर–
स्वर सौरभ लहराया–
प्रभु से पोषित सद्धर्मो को–
मानव ने अपनाया,

जगी धर्म की नयी भावना–
लोग बाग हर्षाए,
जीवन की जडता पर चेतन–
नए भाव लहराए,

जीवो को सद्धर्म बताकर–
सच्ची राह दिखाकर,
प्रभु ने पूरा काम किया सब–
इस धरती पर आकर,

ज्ञान–शिखा की जोत जगाई–
भव का तिमिर मिटाया,
शुद्ध–विशुद्ध–धर्म का भू पर–
केतु नया फहराया,

उनके वचनामृत को पीकर–
तृप्त हुए सब प्राणी,
हुए प्रतिष्ठित पुन भुवन मे–
सच्चे पडित–ज्ञानी,

पार्श्वनाथ ने सोचा अब यह–
पूर्ण आयु है भू पर,
मन मे जगा विचार पधारे–
गिरि सम्मेद शिखर पर,

यही शिखर है पूर्ण विभव से–
सभी तरह मन भावन,
मुक्ति–प्रदायक गिरि अवनी पर–
दिव्याधर अति पावन,

उसी समय सब स्वर्ग–लोक के–
देव–देवियॉ–किन्नर,
अन्तिम दर्शन प्रभु का पावन–
करने आए भू पर,

देवो के भी देव पार्श्व ने–
किया ध्यान अवलम्बन,
फिर शैलेशीकरण किया था–
योग–सिद्ध–परिरम्भण,

प्रभु ने किया यहॉ सथारा–
एक मास का निर्मल,
साथ उन्ही के मुनि जनो ने–
वही किया था उस पल,

श्रावणा शुक्ला, अष्टम–तिथि औ–
था नक्षत्र विशाखा,
इसी दिवस निर्वाण हुआ था–
जग उद्धारक प्रभु का,

देव–देवियाँ और धरा के–
मानव–गण ने मिलकर,
यह निर्वाण–विभा–कल्याणक–
खूब मनाया भू पर,

अपने–अपने घर फिर आए–
प्रभु का यश दुहराते,
उनके शाश्वत वचनामृत के–
गीत हृदय से गाते,

✧ ✧ ✧ ✧

यही धरा का नियम निरामय–
तन भर केवल मिटता,
किन्तु आत्मा सदा चिरन्तन–
भव मे नही सिमटता,

वह प्रकाश का पुन्ज सदा ही–
एक रूप मे रहता,
यही जान जो लेना मन मे–
दुख न कोई सहता,

पार्श्वनाथ ने इसी लक्ष्य को–
प्राप्त किया खुद गह कर,
सभी कठिन अनुप्रेक्षाओ की–
वर्षा–आतप सह कर,

भव के जीवन बने तीर्थंकर–
अपने ही से जग के,
ज्योति अखण्डित बने सत्य की–
दिव्य ज्योति से लग के,

सृष्टि निरतर चलती है नर–
अपने को खुद गढता,
अमर लक्ष्य के शैल शिखर पर–
अपने पॉवो चढता,

खुला क्षेत्र है, श्रम की भू पर–
है मार्यादा भारी,
मनुज परिश्रम से पा सकता–
शक्ति विमल सुखकारी,

जहॉ रहा आलस्य, वहॉ नर–
कुछ भी प्राप्त न करता,
पीडित अपने भव मे ही वह–
जड मे जकडा रहता,

सृष्टि चिरन्तन, इसमे हर क्षण,
केवल दु ख भरा है,
बहुत अगम है यह भव–सागर–
तम–ही तम गहरा है,

इसको उसने पार किया जो–
यत्न सुखद कर पाया,
ज्ञान–किरण से जिसने जीवन–
ऊँचा स्वय उठाया,

कोई भी कुछ कभी किसी को–
यहाँ नही दे सकता,
अपने श्रम से मनुज धरा पर–
सब कुछ खुद ले सकता,

हर भव–भव में पार्श्वनाथ ने–
यत्न किये थे भारी,
केवल अपने श्रम से पाई–
दिव्य शक्ति सुखकारी,

पार्श्वनाथ तीर्थकर का हम–
करे हृदय से वदन,
इससे जग का ताप मिटेगा,
सृष्टि बनेगी नदन।

पच्चीस सर्ग

पार्श्व जिनेश्वर तीर्थकर की–
महिमा सब जन गाते है,
ज़र्जर–दीन–विपन्न पडे नर–
जीवन सुखी बनाते है,

विमल साधना से ही मानव–
उर्ध्वमुखी हो जाता है,
कुछ भी नही असाध्य, मनुज तो–
श्रम से सब कुछ पाता है,

पार्श्वनाथ का वह समाज भी–
सभी तरह से गर्हित था,
पापाचार बढा था, कोई–
प्रभु पर नही समर्पित था,

हृदय–हृदय मे घोर दुराशा–
की ही आग सुलगती थी,
अहकार की तुष्टि–प्रदायी–
सब मे चाव मचलती थी,

नर–नारी के विमल भाव मे–
भेद बडा अविचारी था,
सात्विकता का लेश नही था–
घर–घर भ्रष्टाचारी था,

ऐसे मे प्रभु पार्श्वनाथ ने–
जगमग ज्योति जगाई थी,
भटक रहे उस जन–समाज को–
सच्ची राह बताई थी,

अपना जब व्यक्तित्व धरा से–
ऊपर को उठ जाता है,
तभी मनुज निर्लिप्त भाव से–
देख सभी कुछ पाता है,

इसीलिए है आवश्यक नर–
अपना खुद उदधार करे,
अपने श्रमबल से समाज का–
स्वय विमल सस्कार करे,

यह समाज तो व्यक्ति–व्यक्ति के–
मिलन भाव का आश्रय है,
भिन्न–भिन्न–पुष्पो से जैसे–
होता मधु का सचय है,

इसीलिए जो चाह रहे है
इस समाज का भला करे,
यही श्रेय है उनका, वे खुद–
सात्विक पथ पर चला करे,

व्यक्ति–व्यक्ति गर लगे सुपथ पर–
कष्ट कहाँ रह पाएगा ?
भाव–विभव–सम्पन्न मनुज का–
खुद समाज बन जाएगा,

कितनी छोटी बात कि इस पर–
ध्यान सभी जन दे सकते,
समुचित शिक्षा यही भुवन की–
सब जन जिसको ले सकते,

वर्षा की बौछारो से जब–
पकिल धरती हो जाती,
चलना मुश्किल होता सब का–
राह सुहानी खो जाती,

कौन मनुज तब पूरी भू को–
कोई पट से ढॉक सका,
यह परिवेश गहन है कोई–
अब तक इसे न ऑक सका,

अलग–अलग मानव ही बढकर–
सकट से बच सकते है,
अपना अपना पॉव–त्राण वह–
स्वय पहन–रख सकते है,

यही सत्य है, मनुज स्वय ही–
खुद अपना उद्धार करे,
सुधरेगा फिर यह समाज भी–
इसको ही स्वीकार करे,

पार्श्वनाथ प्रभु ने भी भू पर–
ऐसा ही था काम किया,
स्वयं जगे, फिर भूतल जागा–
भव को शुभ परिणाम दिया,

यही सत्य है, यही श्रेय है–
भुवन इसे अपनाएगा,
और नही तो इस धरती पर–
सत्य नही जग पाएगा,

✧ ✧ ✧ ✧

आज भुवन मे गहन विषमता–
घर–घर मे है फैल गयी,
नरता पर बौछार आज है–
तरह–तरह की नयी–नयी,

इसका कारण यही कि मानव–
मन से बेहद लोभी है,
मनुज–मनुज तो नही रहा है–
चाहे अब वह जो भी है,

ऐसा लोभ समाया नर मे–
नरता उससे दूर हुई,
स्वार्थ–ग्रस्त इस मानव से तो–
मानवता मजबूर हुई,

आज लक्ष्य है, एक सभी का–
कैसे ऊँचा पद पाएँ,
कैसे छल–बल या तिकडम से–
सबसे आगे हम आएँ,

अपने से दृग हटा, मनुज यह–
सोच नही कुछ पाता है,
अपने पर ही अपनेपन का–
ध्यान सदा टिक जाता है,

एक होड–सी लगी हुई है–
उँची कुर्सी पाने को,
लगते सब बेचैन हुए–से–
सत्ता सब हथियाने को,

अजब मची है आपा–धापी–
भीषण शोर–शराबा है,
अपनी गोटी लाल रहे बस–
क्या काशी, क्या काबा है ?

सभी सोचते, पलक–मारते–
सब साधन जुट जाएँगे,
कुछ भी बाकी नही रहेगा–
जैसे ही पद पाएँगे,

और जहाँ जो बैठ गया हटने–
का लेता नाम नही,
राजनीति है यही कि जिसका–
होता शुभ परिणाम नही,

सत्ता की कुर्सी के आगे–
नही कही कुछ दिखता है,
सत्ता का ही दण्ड–निठुर अब–
भाग्य मनुज का लिखता है,

सत्ता की कुर्सी है ऐसी–
विभुता सब भ्रियपाण हुई–
इसके नीचे मानवता खुद–
दबकर अब निष्प्राण हुई,

मानवता जब गयी मनुज का–
शेष न कुछ रह पाएगा,
अनाचार के अन्धकार मे–
मानव खुद मर जाएगा,

सत्ता की इस चकाचौध ने–
मानव को बेहाल किया,
जीवन के हर साधन–सम्बल–
को इसने पामाल किया,

इसी दौड मे मानव का मन–
आज वहाँ है लगा हुआ,
अन्धकार के सन्नाटे की–
जड मे जीवन जगा हुआ,

स्वार्थ–विवश इस भाग दौड मे–
कितना मनुज हुआ छोटा,
कुन्दन था तप–ताप–तपा जो–
आज हुआ सिक्का खोटा,

यही मनुज है जिसने भू पर–
ज्ञान–ज्योति फैलायी थी,
स्वर्ग–लोक की विभुता सारी–
जिसने भू पर लायी थी,

सृष्टि बनी थी मूक, मनुज ने–
जीवन–स्वर–उद्गान किया,
पशु–पक्षी–जड–वृन्त–विटप को–
जीवन का सम्मान दिया,

इसी मनुज ने एक व्यवस्था–
भू की सुखद बनायी थी,
सब जीवो के नव विकास की–
नूतन शक्ति जगायी थी,

सब के सुख मे ही तब नर को–
अपने को सुख होता था,
अपने मे वह सब को पाता–
सब मे निज को खोता था,

किन्तु आज नर बदला गया है—
सत्य चिरतन भूल गया—
स्वार्थ, लोभ की ऑधी मे वह—
जीवन के प्रतिकूल गया,

सभी व्यवस्था बनी हुई है—
किन्तु हृदय है स्वच्छ नही,
इसीलिए हम हो पाए है—
किसी विषय मे दक्ष नही,

लोकतत्र है, किन्तु हृदय से—
कौन इसे अपनाता है,
ऐसा कर का भार कि कोई—
सॉस नही ले पाता है,

आज देश मे कार्य—प्रगति का—
लगता सब अवरूद्ध हुआ,
कौन कहॉ अब पॉव बढाए—
तिमिर बढा पथ रूद्ध हुआ,

आज भयकर ज्वाला भू—पर—
चारो ओर धधकती है,
महानाश की वहिन—शिखा ज्यो—
दिशा—दिशा मे जगती है,

कोई शान्त नही है भू पर—
सभी तरफ बेचैनी है,
हाथ सभी के खडग—कटारी—
बरछी पैनी—पैनी है,

जिसकी लाठी भैस उसी की–
यही कहावत सच लगती,
करूणा–मोह–दया–ममता की–
कही न कोई लौ जगती,

भूखे तडप रहे सडको पर–
उन्हे न रोटी मिलती है,
और कई है खाते–खाते–
जिनकी जान निकलती है,

यही विषमता बडी कठिन है–
इसको मनुज समाप्त करे,
समता की मधु–स्नेह लहर को–
धरती पर परिव्याप्त करे,

और नही तो ज्वार भूख का–
प्रलय–दाह सा आएगा,
जिससे सत्ताधारी नर का–
शिखर–शिखर ढह जाएगा,

सत्ता की कुर्सी पर बैठे–
आज बने जो नेता है,
शासन की जो बागडोर ले–
सबके भाग्य प्रणेता है,

होश करे, अब जनता भूखी–
और नही रूक पाएगी,
आग भूख की नही मिटी तो–
उनको ही खा जाएगी,

बँधा गजब का समॉ भुवन मे–
आह भयकर आती है,
आग निरीहो के शोणित से–
होली खेली जाती है,

बम का है विस्फोट कही पर–
गोली औ बन्दूक चले,
कही गडासे–खजर–भाले–
बरछी–तीर अचूक चले,

कैसा यह आतकवाद है ?
नेता तनिक न डरते है,
शासन मे मनमानी ढॅग से–
सबका शोषण करते है,

भरा–पुरा हो उसका घर–
औरो से क्या काम भला ?
यही हाल जो रहा तो जग का–
क्या होगा अन्जाम भला ?

अपनी–अपनी कह कर सब जन–
अपनी नीति बखान रहे,
वादो और विवादो मे ही–
उलझे सब इन्सान रहे,

सब कहते हैं उनका सब से–
उत्तम है सिद्धान्त यहॉ,
उसके बिना न हो सकती है–
मार–काट सब शान्त यहॉ,

कहने को तो सब कहते है–
किन्तु कहॉ सच्चाई है ?
कौन बताए किसके सिर पर–
कैसी आफत आई है ?

किस पर गोली कब छुटेगी–
किसका घर जल जाएगा,
कौन बताए किस जन का कब–
काल कहॉ से आएगा,

अजब अनिश्चय की यह स्थिति है–
सभी और उत्पात जगा,
तरह–तरह के उत्पीडन का–
जीवन पर आघात जगा,

सुबह–शाम हर तरफ मरण की–
आग दिखाई पडती है,
प्रतिक्षण जैसे महामृत्यु की–
रोर सुनाई पडती है,

आज भयानक हाल भुवन का–
इसका अब उपचार करो,
महाकाल के इस उत्प्रेरक–
क्षण का अब सहार करो,

✧ ✧ ✧ ✧

पार्श्वनाथ के वचनामृत सब–
सार्थक आज पुन लगते,
उनके पावन उद्बोधन से–
भाव पुनीत सदा जगते,

आज हृदय की गहराई मे–
निर्मल भाव जगाना है,
जडता ग्रस्त मनुज को ऊपर–
दिव्य भाव है लाना है,

नर से नरता बहुत बडी है–
यही बात बतलानी है,
मानवता की विभुता सारी–
भू पर पुन जगानी है,

दम्भ–घृणा औ मोह–द्रोह का–
दाह न मन मे रह पाए,
ऐसी जोत जगे अन्तर मे–
मन की कटुता मिट जाए,

मानव–मानव मे फिर जागे–
नया प्रेम सम्बन्ध यहॉ,
हृदय–हृदय मे आत्म बोध की–
फैली नयी सुगन्ध यहॉ,

पार्श्वनाथ के उपदेशे को–
आओ, अगीकार करे,
इससे भव का ताप मिटेगा–
सत्य यही, स्वीकार करे,

हृदय–हृदय मे व्यथा अपरिमित–
क्रन्दन चारो ओर भरा,
आज मनुजता की दुनिया मे–
दानवता का जोर बढा,

ऐसी व्यथा भरी है भव मे–
क्षण–क्षण नर अकुलाते है,
दारूण दु:ख की कथा श्रवण कर–
अश्रु उमडते आते है,

✧ ✧ ✧ ✧

जैसे जल की मीन तीर पर–
आकर के मर जाती है,
निज सुगन्ध के अन्वेषण मे–
हिरणी प्राण गॅवाती है,

देख चकोरा चॉद मगन मे–
वह्नि–कणो को खाता है,
दीप–शिखा मे शलभ झुलस कर–
अपना प्राण गॅवाता है,

जैसे कोई मादक धुन पर–
नाग सरकता आता है,
पूनम की राका मे जैसा–
सिन्धु ज्वार जग जाता है–

उसी तरह से मनुज–मनुज मे–
जगते अविरल राग सदा,
रहते जो परिरम्भण बनकर–
सागर मे ज्यो झाग सदा,

मोह–ग्रस्त इस मानव–मन को–
इसकी है पहचान नही,
इसीलिए उसके अन्तर का–
जगता है भगवान नही,

जिस दिन सत्व तत्व को मानव–
मन मे खुद पहचानेगा,
आत्मा से है भिन्न वपुष यह–
ऐसा ही जब जानेगा,

उस दिन उसकी दृष्टि खुलेगी–
नयी किरण लहराएगी,
उदयाचल के बालारूण–सी–
ज्योति हृदय मे आएगी,

नव प्रकाश फैलेगा भू पर–
सघन तिमिर मिट जाएगा,
मानवता की नई लहर से–
नयन–नयन मुस्काएगा,

पार्श्व जिनेश्वर के भावो को–
करे सदा नव–नव वन्दन,
इससे हृदय सुवासित होगा–
जैसे मलयानिल चन्दन,

एक यही है राह कि जिससे–
नर सागर तर सकते है,
तन–विभेद कर अन्तर्मन मे–
सत्व ग्रहण कर सकते है,

और नही तो मनुज भटकता–
यो ही प्राण गॅवाएगा,
नर–तन धारण करके भी–
कल्याण नही कर पाएगा,

पार्श्वनाथ के शुभ उपदेशो–
का ही एक सहारा है,
यही सत्य का अन्वेषण है–
जीवन का ध्रुवतारा है,

इसी मार्ग पर चलकर मानव–
प्राप्त मनुजता कर सकता,
धीरे–धीरे नर भव को ही–
अन्तिम भव वह कर सकता,

किरण गगन मे झॉक रही है–
पुन भुवन मुस्काएगा,
दिव्यालोकित कण–कण होगा–
हृदय–हृदय जग जाएगा,

जड के सिचित होने पर ज्यो–
तरू–पल्लव लहराते है,
स्पर्श सुकोमल से वीणा पर–
गीत उभर कर आते है,

वैसे ही जब पार्श्वनाथ के–
वचन हृदय मे आऍगे,
नयी विभा से रन्ध्र–रन्ध्र तक–
पुलकित खुद हो जाऍगे,

तम का घेरा मिट जाएगा–
दिव्य धार लहराएगी–
मानवता की नई जागरण–
ध्वजा स्वय फहराएगी,

मानव अपने सद्धर्मो से–
यह पावन पथ पाता है,
अपने ही कैवल्य–परम–पद–
साधन से पा जाता है,

इसीलिए यह धर्म–मार्ग तो–
श्रमण–धर्म कहलाता है,
इसका जो अवलम्बन करता–
वही श्रेष्ठ बन जाता है,

पार्श्वनाथ की जय–गाथा को–
हम सब निशि–दिन गाएँगे,
तमसावृत इस जीवन–पथ पर–
नव प्रकाश फैलाएँगे,

जयति जिनेश्वर ! जय परमेश्वर !
हम सब शीश नवाते है,
करूणाकर के चरण कमल पर–
श्रद्धा–सुमन चढाते है ।।